ॐ

एकमेवाद्वितीयम् ॥



सर्व उपनिषद्रूप प्रमाणोंके मध्य राजा के समान यह उपनिषद् उत्तम होने से मस्तकस्वरूपहै। एतदर्थही इसको मुंडक उपनिषद् कहतेहैं। और इस उपनिषद् में तीन मुंडकहैं और प्रत्येक मुंडक के दोदो खंडहैं इसलिए इसके तीनमुंडक और छः खंड हैं।

चिह्न भावार्थ ॥

“ इस चिह्नान्तर मूलमन्त्रके वाक्य ॥
‘ इस चिह्नान्तर वाक्योंके अक्षरार्थ ॥
} इस चिह्नान्तर अन्य श्रुतियोंके प्रमाण ॥
) इस चिह्नान्तर पर्य्याय वा शेष विशेष ॥
] इस चिह्नान्तर विशेषार्थ ॥

ॐ तत्सत् ब्रह्मणे नमः ।

अथर्ववेदीय मुण्डकोपनिषद्प्रारम्भः ।

ॐ ब्रह्मा देवानां प्रथमः सम्बभूव विश्वस्य कर्त्ता भुवनस्य गोप्ता । स ब्रह्मविद्यां सर्वविद्याप्रतिष्ठामथर्वाय ज्येष्ठपुत्राय प्राह ॥ १ ॥

भाषा टीका का आरम्भ ।

हे सौम्य! "ब्रह्मादेवानांप्रथमःसम्बभूव" ब्रह्मादेवताओंके मध्य प्रथम होताभया। [ब्रह्मोपनिषद् औरगर्भोपनिषद् आदि अथर्वणवेद के बहुतसे उपनिषद्हैं। तिनको शारीरक सूत्रके भाष्यबिषे अनुपयोगीहोने करके तिनका व्याख्यानकरनेको अनिच्छितहै ताते। और (अदृश्यमग्राह्य) इत्यादि वाक्य से, अदृश्यताआदिक गुणरूप धर्म के कथन से, इत्यादिक अधिकरणसूत्र विषे उपयोगी होनेसे व्याख्यानकरनेकोइच्छित इसमुंडक उपनिषद्के आरंभकेपदरूप प्रतीकको यहां भाष्यकार ग्रहणकरतेहैं] इत्यादिरूपयहअथर्वणवेदका मुंडक उपनिषद् है, सो व्याख्यान करनेको इच्छित है। [शंका. ननु, यह उपनिषद् मंत्ररूपहै, और मंत्रोंको कर्मसम्बन्धी होनेके प्रयोजनवान् पनाहै। और इन मंत्रों की योजनाके करनेवा

होतेहैं एतदर्थं व्याख्यान करनेको इच्छितपना संभवता नहीं ॥ उ०॥ हे वादिन्! इस आशंका का यह उत्तरहै कि इनमंत्रोंका कर्मसे सम्बन्धहीहै, यह तेराकथन सत्यहीहै, तथापि ब्रह्मविद्याके प्रकाश करनेकी सामर्थ्य से विद्यासे सम्बन्ध होगा ॥ शङ्का ॥ ननु, विद्या को पुरुषकृत होनेसे तिसकी प्रकाशक इस उपनिषद्को भी पुरुष रचितपनेका प्रसंग प्राप्तही होताहै ताते पक्षपाती पुरुषके दोषसे जन्यता शङ्काकरके इस उपनिषद्की अप्रमाणता होनेसे व्याख्यान करनेको जो इच्छितपना सो बने नहीं ॥स०॥ हे वादिन्! यहां यह अर्थहै कि, विद्या के सम्प्रदाय के प्रवर्त्तकही पुरुषहैं, परन्तु नवीन कल्पना से रचनेवाले पुरुष नहीं। और तिनको विद्याके सम्प्रदाय का कर्त्तापना जोहै सोभी आधुनिक नहीं कि जिसकरके अविश्वास होय, किन्तु अनादि परम्परासे यह विद्याप्राप्तहै। एतदर्थ अनादिकालसे प्रसिद्ध ब्रह्मविद्याके प्रकाशने बिषे समर्थ जो उपनिषद् तिनका जो पुरुषोंसे सम्बन्धहै सो सम्प्रदाय के कर्त्तापनेकी परम्परारूपहीहै। ताते उन पुरुषोंको विद्याके सम्प्रदायके कर्त्तापने रूपही सम्बन्धको आदि बिषेही यह उपनिषद् कहता है] तहां आदिविषे इस उपनिषद् के विद्या के सम्प्रदाय के कर्त्तापनेकी परम्परारूप सम्बन्धको ऐसेमहत् (बड़ेश्रेष्ठ) पुरुषोंने परम पुरुषार्थका साधन होनेकरके इसविद्याको बड़ेश्रमसे प्राप्तकियाहै, इस रीतिकीविद्या की स्तुत्यर्थ। अर्थात् [जैसे विद्याका पुरुषों से सम्बन्ध है उसी प्रकार जब उपनिषद्काभी पुरुषकरके रचितपनेके निवारणार्थ पुरुषोंसे सम्बन्ध कहनेको इच्छितहोय, तब तिसप्रकारके सम्बन्धका कहनेवाला कोई अन्य चाहिये। औरयहां आपही उपनिषद् करके अपनेही सम्बन्धके कहने से आत्माश्रय दोष प्राप्तहोता है॥ यह शङ्का चित्तविषे लाकर आचार्य कहतेहैं॥यहां यह अर्थ है कि विद्या की स्तुतिविषे तात्पर्यसे अपने सम्बन्धके कथनविषे अपनी प्रवृत्तिरूप दोष नहीं] आपही यह उपनिषद् कहता है। और जिसकरके स्तुतिकर रुचिकी विषयभई विद्या तिसविषे मुमुक्षुजन आदरपूर्वक

प्रवृत्त होतेहैं, एतदर्थ श्रोताकी बुद्धिविषे रुचिके उपजावनेके अर्थ विद्याको महान् कहतेहैं। और [विद्याका जो प्रयोजन है सोई इस उपनिषद्काभी प्रयोजन होगा इस अभिप्रायसे विद्याका प्रयोजन से सम्बन्ध कहतेहैं] प्रयोजनके साथ विद्याके साधन साध्यरूप सम्बन्धको तौ "भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्तेसर्वसंशयाः" हृदयकी ग्रन्थिभेद (नाश) को पावतीहै और सर्वसंशय अपने छेदनको पावतेहैं। इत्यादि इसही उपनिषद्के दूसरे मुंडकके दूसरेखंडकी आठवीं श्रुतिवाक्यसे आगे कहेंगे। और यहां अर्थात् जब संसारके कारणकी निवृत्ति ब्रह्म विद्याका फलहै तब अपर विद्यासेही तिसकी निवृत्तिका संभवहै ताते तिस संसारके कारणकी निवृत्तिरूप फल के अर्थ ब्रह्मविद्याकी प्रकाशक उपनिषद् व्याख्यान करनेको योग्य नहीं। यह शङ्का विचारके कहतेहैं यहां यह भावहै कि संसारका कारण अविद्या आदि दोषहै, तिसका निवर्त्तकपना कर्मरूप अपराविद्याको संभवता नहीं, क्योंकि कर्म और अविद्या आदिकोंका परस्पर अविरोध है जिस करके अनेकवार प्राणायाम को करनेवाले पुरुषकोभी शुक्ति (सीपी) के साक्षात् दर्शन विना रजत (रूपा) विषयक जो भ्रांतिरूप अविद्या तिसकी निवृत्ति देखते नहीं [एतदर्थ अपर विद्याको संसारका कारण जे अविद्या तिसका निवर्त्तकपना है नहीं] विधि निषेधमात्र विषे तत्पर जो अपरशब्दकी वाच्य ऋग्वेदादिरूप विद्याहै, तिस विषे संसार के कारण अविद्या आदि दोषका निवर्त्तकपना नहींहै । एतदर्थ "पराचैवापराच" । परा, अपरा । [किंवा परमपुरुषार्थ के साधन होने से ब्रह्मविद्याको परविद्यापना है, और निकृष्ट संसाररूप फलवाली होनेसे कर्मविद्याको अपरविद्यापना है, ताते नाम के बलसे अपरविद्याको मोक्षकी साधनताका अभावहै, ऐसे जानते हैं। इस अभिप्राय से यहां कहतेहैं] इस प्रकार इस मुंडक उपनिषद्के चतुर्थ मन्त्रकरके विद्याके भेदके कारणपूर्वक "अविद्यायामन्तरे वर्त्तमानाः" । अविद्याके भीतर वर्त्तमान इत्यादिरूप

इस प्रथम मुंडकके सोलहवें मन्त्ररूप वाक्यसे आपही कही। और [कर्म जड़ जो कहते हैं कि केवल ब्रह्मविद्याको कर्मकी अंगभूत होनेसे स्वतंत्रतासे पुरुषार्थ (मोक्ष) का साधनपना नहीं है इस प्रकारका जो कथन सो पिछली श्रुतिनेही निषेधकिया है। इसप्रकार यहां कहतेहैं। यहां यहअर्थहै कि, ब्रह्मविद्याकोकर्मकी अंगरूप होनेसे इस श्रुतिविषे कही जो कर्मकी निंदा सो चाहिये नहीं। और जिसकरके अंगके विधानार्थ अंगीकी निंदा नहीं करते हैं। और यहां तो सर्वसाध्य और साधनकी निंदासे तिन विषयों विषे वैराग्यके कथनपूर्वक परब्रह्मके प्राप्तिकी साधन ब्रह्मविद्या को श्रुतिकहे है। एतदर्थ ब्रह्मविद्याको आपही मुख्य होनेसे तिस की प्रकाशक उपनिषद्को कर्मकर्त्ताकी स्तुतिकी कारकता नहींहै] तैसे "परीक्ष्य लोकान् कर्मराचितान्"। लोकोंको कर्मरचित जानके। यह इसही उपनिषद्के प्रथम मुंडकके द्वितीयखंडके ११ वें मन्त्रकरके सर्वसाधन और साध्यरूप विषयविषे वैराग्यपूर्वक परब्रह्मकी प्राप्तिका साधन, और गुरुके [जब उपनिषद्को स्वतन्त्र ब्रह्मविद्याकी प्रकाशकता होय, तब तिनके अध्ययनकर्त्ता सर्वको ही ब्रह्मविद्या होनी चाहिये सो क्यों नहीं होतीहै, यह शंकाविचारके कहतेहैं। यहां यहभावहै कि, यद्यपि सर्वको गुरुके अनुग्रह आदिक संस्कारके अभावसे ब्रह्मविद्या नहीं होतीहै परन्तु उत्तमाधिकारीको होतीहै] अनुग्रहसेप्राप्तहोनेयोग्य जो ब्रह्मविद्या है, तिसको कहतेहैं। और [शंका, ब्रह्मविद्याजबस्वतन्त्रहै तबप्रयोजनकीसाधन न होगी, क्योंकि सुखकी प्राप्ति और दुःखकी निवृत्ति इनदोनोंको प्रवृत्तकरके साध्यहोनेका निश्चयहै ताते॥ स०॥ तहांकहतेहैं।यहां यह अर्थहै कि स्मरणमात्र से विस्मरणभये सुवर्णके लाभके होते सुखकेप्राप्तिकी सिद्धिहै, और रज्जुस्वरूप के ज्ञानमात्रसे सर्पजन्यभयकम्पादिकदुःखकीनिवृत्तिकी सिद्धिहै ताते, सुखकी प्राप्ति और दुःखकीनिवृत्तिरूप प्रयोजनको नियमकरके प्रवृत्ति और निवृत्तिकरके साध्यपना नहीं है। एतदर्थ श्रुति, प्रतीतकिये विद्याका

प्रयोजन तिस प्रयोजनसे सम्बन्धको वारंवार कहती है। एतदर्थ तिस विद्याकी प्रकाशक उपनिषद्का व्याख्यान करनेकी योग्यता का संभवहै] "ब्रह्मविद्ब्रह्मैव भवति" । ब्रह्मवेत्ता ब्रह्मही होता है । और "परामृताः परिमुच्यन्ति सर्व्वे" । सर्वपर अमृतहुए मुक्तहोते हैं। इत्यादि तृतीय मुंडकके वाक्यन से इस ब्रह्मविद्याके प्रयोजन को बारंबार कहतेहैं। [एकदेशीके मतविषे जो कहतेहैं कि स्वाध्याय (अपनी २ शाखाके सम्बन्धी वेदभाग) के अध्ययनके विधिका जो अर्थ ज्ञानरूप फल तिसका तीन (ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य) वर्णोंको अधिकारहै । एतदर्थ सर्व्व आश्रमोंके कर्म से समुच्चयको प्राप्तभई ब्रह्मविद्याही मोक्षकी साधकहै। तहां कहतेहैं। यहां यह अर्थहै कि, सर्व सामग्रीके त्यागरूप संन्यास बिषे स्थित परब्रह्मकी विद्याही मोक्षका साधनहै, इसप्रकार स्वयं वेदही देखावताहै । तिसप्रकार संन्यासियोंको कर्म साधनके अभावसे कर्मका संभव नहीं। और तिनके आश्रमका धर्मभी शम दमादिकोंसे वृद्धिको प्राप्तभई सुविद्याबिषे सम्यक् निष्ठावान्पनाही है। और तिन (संन्यासी) का शौच आचमनादिक कर्मभी वस्तुतः आश्रमका धर्म नहीं। क्योंकि सोकर्म लोकसंग्रहार्थ है ताते। और "न ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते" यहांज्ञानके तुल्यपवित्र (अन्य) नहींहै। इस गीतास्मृति के वाक्यसे, निरन्तर ज्ञानाभ्यास (आत्मानुसन्धान) मात्रसेही अपावनता (अज्ञान) की निवृत्तिहै ताते और त्रिकालस्नानादिक विधिको अज्ञानी संन्यासीका विषयत्व है ताते। एतदर्थ कर्मकी निवृत्तिसेही ज्ञान और कर्मका समुच्चय बनेनहीं] यद्यपि ज्ञानमात्र बिषे सर्व आश्रमके पुरुषोंको अधिकारहै। तथापि संन्यासआश्रम बिषे स्थित विद्याहीमोक्षका साधन है, कर्मसहित विद्या मोक्षका साधन नहीं। और यह "भैक्ष्यचर्य्याचरन्तः" । भिक्षाके भक्षणको आचरतेहुये। प्रथममुंडकके दूसरेखंडके ११ वेंमन्त्रमें और "संन्यासयोगात्" संन्यासयोगसे। तीसरेमुंडकके ६ठे मन्त्रमें। इत्यादिवाक्य को स्वयं श्रुति कहतीहुई देखावेहै। और [इसकहनेके हेतुसेभीकर्म

सहित विद्यामोक्षका साधन नहीं इसप्रकार कहतेहैं। यहां यह अर्थ है कि मैं अकर्त्ता ब्रह्महीहों, और कर्मकर्त्ताहों यह स्पष्टव्याघातदोषहै] विद्या और कर्मके परस्पर विरोध कारणसे ब्रह्म आत्माकी एकताके ज्ञानके साथस्वप्नविषे भी कर्म सम्पादन करनेको शक्य नहीं। और [उत्पन्न हुई विद्यावाला पुरुषभीजब ब्रह्म और आत्माकी एकताको भूलताहै, तब सिवाय कर्मके और क्या करेगा, तातेज्ञान कर्मकासमुच्चयसंभवताहै, इसप्रकार कहनेको योग्य नहीं, सोई आचार्य कहते हैं] विद्याके कोई एककालविषे अभावके निमित्तको अनियमितहोनेसे काल और कर्मसे संकोचका असंभव है। ननु, अङ्गिरा आदिक गृहस्थोंको विद्याके सम्प्रदायकी प्रवर्त्तकताके देखनेसे गृहस्थाश्रमके कर्मोंसे ज्ञानका समुच्चय, इस उक्त लिंगसे जानाजाताहै। यह शंका विचारके कहतेहैं। यहां यह भावहै कि युक्ति सहित लिंगको ही सूचकता के अंगीकार करनेसे और समुच्चयविषे युक्तिके अभावसे और उलटा विरोधके दर्शन से लिंगसे समुच्चयकी सिद्धिनहींहै। और सम्प्रदायके प्रवर्त्तक पुरुषोंको गृहस्थाश्रमके आभासमात्रपनेके अनुसंधानकर बारंबारबाधसे, और इस अर्थ विषे ("यस्यमेचास्ति सर्वत्र यस्यमेनास्तिकिञ्चन। मिथिलायांप्रदीप्तायां नमेकिञ्चन दह्यत इति") । जिस मेरा सर्वत्र है और जिस मेरा कुछभी नहीं है मिथिलापुरीके दग्धभये मेरा कुछभी दग्धहोता नहीं। इस राजा जनकके उद्गार वा उद्धारको देखनेसे कर्माभास से समुच्चय नहीं होताहै। और तहां प्रेरक प्रमाणरूप श्रुतिभी नहीं देखतेहैं] जो पूर्वके गृहस्थोंविषे ब्रह्मविद्याके सम्प्रदायका कर्त्तापना आदिक लिंगहै सोतो पूर्वस्थित विद्याको बाधकरनेको इच्छा करता है। और जब तम और प्रकाशका संभव अनेकन प्रकारसेभी एक ठेकाने करनेको शक्य नहीं, तब केवल लिंगों (चिह्नों) से एक ठेकाने करनेको शक्य न होय इसमें क्या कहनाहै, कुछभी नहीं। [अब सिद्धकरी जो इस उपनिषद् के व्याख्यान करनेकी योग्यता तिसको आचार्य समाप्त कर, इस रीति से उक्त सम्बन्ध और प्रयोजन

वाले इस मुंडकउपनिषद्का अल्पग्रंथरूप विवरण (संक्षेपसे व्याख्यान) करनेका आरंभ करतेहैं। [इसग्रन्थविषे उपनिषद् शब्दकी योजना कैसेहै इसशंकाके होनेसे ग्रंथको उपानिषद् शब्दकी वाच्य विद्यारूप अर्थवाला होनेसे ग्रंथविषे उपनिषद् शब्दकी योजना लक्षणासेहै इसप्रकार देखावनेके अर्थ विद्याको उपनिषद् शब्दका अर्थपना कहते हैं] जो मुमुक्षुपुरुष इस उपनिषद्रूप ब्रह्मविद्या को श्रद्धा भक्तिपूर्वक प्रवृत्तहुये परम प्रेमास्पद (परम प्रेम) की विषय होनेकरके ग्रहणकरते हैं, तिनके गर्भवास जन्म जरा और रोग मरणादि क्लेशोंकेसमूहों को शिथिल करेहैं । अर्थात् [यहां यह अर्थ है कि अपरिपक्व ज्ञानसे दो वा तीन जन्मों करके मोक्ष होने का संभवहै ताते ब्रह्मविद्या क्लेशके समूहोंको शिथिल करे है ऐसे कहाहै] वा परब्रह्मको प्राप्तकरेहैं। और अन्य अविद्याआदिक संसारके कारणको नाशकरे है, एतदर्थ इसको उपनिषद् कहते हैं। और अब इसके मन्त्रोंका व्याख्यान करते हैं, ब्रह्मा जो है सो धर्म ज्ञान वैराग्य और ऐश्वर्य, इन चारगुणों करके अन्य सर्वको उल्लंघ के वर्त्तताहै, एतदर्थ परिवृद्ध (सर्वसे बड़ा) है और इसही से महान्है ताते सो " ब्रह्मा देवानां प्रथमः सम्बभूव"। ब्रह्मादेवताओंके मध्य प्रथम होताभया। ब्रह्मा द्योतनवान् (प्रकाशयुक्त) इन्द्रादि देवताओंके मध्य गुणोंकरके प्रथम अर्थात् मुख्य वा उन देवताओंके पूर्व हुआ स्वतन्त्र होनेकरके आपही प्रकट होताभया। जिसप्रकार धर्म अधर्म (पुण्य पाप) के वशते अन्य संसारी जीव उपजते हैं तैसे नहीं । "योसावतीन्द्रियग्राह्य इत्यादिस्मृतेः"। जो यह इन्द्रियनसे ग्राह्यवस्तुको उल्लंघके वर्त्तताहै सूक्ष्महै, अप्रकटहै, सनातनहै, सर्वभूतमयहै, और अचिन्त्य है सो यह आपही प्रकट होताभया। अर्थात् शुक्र शोणितके संयोग विना आविर्भावकोपाया इस स्मृतिके प्रमाणसे ब्रह्मदेवका स्वतन्त्रपना जानाजाता है । और पुनः सो ब्रह्मा कैसाहै "विश्वस्यकर्त्ता भुवनस्यगोप्ता"। विश्व का उत्पन्न करनेवाला और भवनका पालन करनेवाला

सर्व जगत् का उत्पन्नकरनेवाला है और उत्पन्न किये भुवनों का (जगत्का) पालन (रक्षा) करनेवाला है। यह जो विद्याके प्रवर्त्तक ब्रह्माका विशेषण है सो विद्याकी स्तुत्यर्थ है और "। सब्रह्मविद्यां सर्वविद्याप्रतिष्ठां"। सोई सर्व विद्या की प्रतिष्ठारूप ब्रह्मविद्या को। सोई प्रख्यात महान् भाववाला ब्रह्मा, ब्रह्म जो परमात्माअक्षर है तिसकी जो विद्या कि ;येनाक्षरंपुरुषवेदसत्यं; । जिसकर के सत्य (अक्षर) पुरुष जानाजाता है। जिस विद्याकरके अक्षरब्रह्म जानाजाता है, इस श्रुतिउक्त विशेषणसे परमात्माको विषयकरनेवालीहै, एतदर्थब्रह्मविद्या कहतेहैं। अथवा सर्वकेअग्रज (प्रथमउत्पन्नहोनेवाले) ब्रह्माने अपने अनुभवसे कथन किया है, एतदर्थ इसको ब्रह्मविद्या कहते हैं। और सो सर्व विद्याके आविर्भाव (प्रकट) होने की हेतु है तिसकरके सर्व विद्याओंकी प्रतिष्ठा (आश्रय) है। [महावाक्यसे उत्पन्नभई बुद्धिवृत्तिसे आविर्भाव (साक्षात्कार) को प्राप्तभया ब्रह्महीं ब्रह्मविद्या है। और सोई ब्रह्म जिसकरके सर्वका प्रकाशक है तिसही करके सर्वविद्याकी प्रकाशक होनेकरके आश्रय करते हैं, ऐसी जो ब्रह्मविद्या सो सर्व विद्याकी प्रतिष्ठा (आश्रय) है] अथवा सर्व विद्या करके जानने योग्य वस्तु जिस (विद्या) करके जानते हैं, अर्थात् जिस (विद्या) के उत्पन्नहुये सर्व विद्याकी समाप्ति होती है, । तथाच ;येनाश्रुतं श्रुतं भवति अमतं मतमविज्ञातं विज्ञातमितिश्रुतेः; । जिसकरके नहीं श्रवण किया वस्तु श्रवणकिया होता है। और, नहीं मनन किया वस्तु मनन किया होता है और नहीं विज्ञात (निश्चय) किया वस्तु विज्ञात (निश्चय) किया होता है, इस श्रुति के प्रमाणसे। एतदर्थ सो (ब्रह्मविद्याको) सर्व विद्याकी प्रतिष्ठा (अवधि) कहते हैं। तिस सर्व विद्याकी प्रतिष्ठारूप ब्रह्मविद्याको, ब्रह्माके अनेक सृष्टिके प्रकारों विषे एक सृष्टिके प्रकारके पूर्वमें अथर्वानाम ऋषि उत्पन्न किया है, एतदर्थ सो ब्रह्माका ज्येष्ठपुत्रहै, तिस "। अथर्वायज्येष्ठपुत्रायप्राह"। अथर्वानाम ज्येष्ठ

अथर्वणे यां प्रवदेत ब्रह्माऽथर्वा तां पुरो वाचाङ्गिरे ब्रह्मविद्याम् । स भारद्वाजाय सत्यवाहाय प्राह भारद्वाजोऽङ्गिरसे परावराम् २ ॥

पुत्रके अर्थ कहता भया । अथर्वानामवाले अपने ज्येष्ठपुत्रके ताईं (ब्रह्मा) कहता भया १ ॥ ॐ तत्सत् ॥

२ हे सौम्य ! " अथर्वणे यां प्रवदेत ब्रह्मा " । जिसको ब्रह्मा अथर्वाऋषिके अर्थ कहताभया । जिस इस ब्रह्मविद्या को ब्रह्मा अपने ज्येष्ठपुत्र अथर्वानामवाले ऋषिके अर्थ कहताभया । और " तांपुरोवाचांगिरे ब्रह्मविद्याम् " । तिस ब्रह्मविद्याको पूर्व अङ्गिरा को कहताभया । तिस ब्रह्मासे पाईभई ब्रह्मविद्याकोही अथर्वा नामवाला ऋषि सर्व से पूर्व (पहिले) अङ्गिरानामवाले ऋषीश्वर के अर्थ कहताभया । और " सभारद्वाजाय सत्यवाहाय प्राह " । सो भारद्वाज गोत्रोत्पन्न सत्यवाहके अर्थ कहताभया । सो अङ्गिरानामवाला ऋषीश्वर, भारद्वाजगोत्रवाले सत्यवाहनामवाले ऋषि के अर्थ कहताभया । और " भारद्वाजोऽङ्गिरसे परावराम् " । भारद्वाजपरसे अवर करके प्राप्तभई विद्याको अङ्गिरसके अर्थ कहता भया । सो भारद्वाज गोत्रोत्पन्न सत्यवाहनामक ऋषि जो परब्रह्म से अवर (अश्रेष्ठ) ब्रह्माकरके प्राप्तभई है परावरा है । वा पर और अपररूप सर्वविद्याके विषयविषे व्याप्तहोनेकरके जिसको परावरा कहते हैं । ऐसी तिस परावररूप विद्याको अङ्गिरसनामवाले अपने शिष्य वा पुत्रके अर्थ कहता भया २ ॥

३ हे सौम्य ! " शौनकोहवैमहाशालोऽङ्गिरसंविधिवदुपसन्नः पप्रच्छ " । बड़े घरवाला शौनकऋषि विधिवत् समीपआय निश्चय स्पष्ट पूछता भया । महान् गृहस्थ (धन कुल विद्या सम्पन्न) ऐसा जो शुनक नाम ऋषि का पुत्र शौनक नामवाला ऋषि, सो भरद्वाज गोत्रवाले सत्यवाह नामवाले ऋषिके शिष्य अङ्गिरस नामवाले मुनीश्वर रूप आचार्य के ताईं विधिवत्,

शौनको ह वै महाशालोऽङ्गिरसं विधिवदुपसन्नःपप्रच्छ ।
कस्मिन्नु भगवो विज्ञाते सर्वमिदं विज्ञातं भवतीति ३ ॥

अर्थात् शास्त्रानुसार समिधादि द्रव्य लेके, समीप प्राप्तहोय प्रश्न करता भया। यहां शौनक और अंगिरसके सम्बन्ध के पीछे विधिवत्, इस विशेषण को कहा है, तिस करके पूर्वके ऋषियों के, आचार्य समीप जाय प्रश्न करने की विधिका अनियम है, ऐसा जानाजाता है। अथवा, विधिवत्, यह जो विशेषण है सो मध्यदीपकन्याय के प्रमाण है, अर्थात् [जैसे देहली के ऊपर धरा दीपक दोनोंओर प्रकाश करता है, तैसेही मूल श्रुतिविषे अंगिरा शब्द और शिष्य का विशेषण रूप, उपसन्न, शब्द इन दोनों के मध्य जो, विधिवत्, शब्द है तिसका दोनों ओर सम्बन्ध है] और अस्मदादिकों विषे भी आचार्य के समीप जायके प्रश्नकरने की विधिकी इष्टता है ॥ प्र० ॥ सो आचार्य के समीप जायके प्रश्नका करना क्या है ॥ उ० ॥ शौनकउ० ॥ ' कस्मिन्नुभगवो विज्ञातेसर्वमिदंविज्ञातंभवतीति ' । हे भगवन् ! किसके विशेष करके जाने हुये सर्व यह विशेष करके जानाजाता है। हे भगवन् ! हे पूजा करने योग्य ! किसके विशेष करके जाने हुये यह सर्व जानने योग्य वस्तु विशेष करके जानाजाता है यहां ' एकस्मिन्ज्ञाते सर्वविद्भवतीति ' । एकके जानने से सर्व का जानने वाला होता है। इसप्रकार शिष्ट पुरुषों के संवादको शौनक ऋषि पूर्व श्रवण करता भया है। ताते तिस एक वस्तु के विशेष रूपके जानने की इच्छा करता भया ' कस्मिन्नुविज्ञाते ' । किसके जाने हुये। ऐसे तर्कको करताहुआ पूछताभया [उपादान कारण (जैसे घटका उपादान मृत्तिका)से कार्यकी पृथक्सत्ताका अभावहै, तिस करके उपादानके जानेहुये, तिसका कार्य तिस उपादान से भिन्न नहीं, इस प्रकार जानाजाता है, ऐसी लोकों विषे सामान्य व्याप्ति है तिसके बलसे वो पूछता भया, ऐसे कहते हैं] अथवा

तस्मै सहोवाच । द्वे विद्ये वेदितव्ये इति ह स्म यद्ब्रह्मविदो वदन्ति परा चैवापरा च ४ ॥

लोकनकी सामान्यदृष्टि से जानके ही पूछता भया । जैसे लोक बिषे समान जातिआदिक समस्त भेद जोहै सो समानजाति आदिककी एकताके ज्ञानसे लौकिक पुरुषोंकरके जाननेविषे आवते हैं । तैसे ही सर्व जगत्के भेदका एक कारण कौन है, कि जिस एक के जानेहुये सर्व जानाजाता है, यह भी लौकिक जनोंकरके जानने में आवता है । एतदर्थ सामान्य लोकोंकी दृष्टि से यह प्रश्न बनता है । [अब प्रश्नके अक्षरोंकी असमीचीनताका आक्षेप करके समाधान करते हैं । यहां यह अर्थ है कि, सो क्याहै इसप्रकार उच्चारण के किये अक्षरोंकी बाहुल्यतासे श्रम होता है, तिससे भयकरके "कस्मिन्नु विज्ञाते" । किसके जानने से । इसप्रकार अक्षरोंकी सुगमताके लाघवसे यह प्रश्नहै] ननु जब अज्ञातवस्तुविषे "कस्मिन्नु विज्ञाते" । किसके जानने से । यह प्रश्न अघटित है, ताते प्रथम, सो क्या है, ऐसा प्रश्न युक्तहै, पश्चात् वस्तुके सद्भाव के सिद्धभये "कस्मिन्नु विज्ञाते" । किसके जानने से । ऐसा प्रश्नहोता है, जैसे लोकबिषे पेटी (सन्दूक) आदिक आधारके सद्भावका प्रथम ज्ञान होने से तब पश्चात् यह अमुकवस्तु किसबिषे रखने के योग्य है, यह प्रश्न होता है तैसे ॥ सो कथन बने नहीं । क्योंकि शिष्य अक्षरों की बाहुल्यता करके श्रम से भयको प्राप्तभया होता है ताते । सो क्या है कि जिसके जानने से सर्वका जाननेवालाहोताहै, ऐसा प्रश्न संभवे नहीं, किन्तु "कस्मिन्नु विज्ञाते सर्वमिदं विज्ञातं भवतीति" । किसके जानने से यह सर्व जानाजाताहै । इस प्रकार का प्रश्न संभवता है ३ ॥

४ हे सौम्य ! "तस्मै सहोवाच" । तिसके अर्थ सो स्पष्ट कहता भया । तिस प्रश्नकर्त्ता शौनकऋषिके अर्थ सो अंगिरस वा अंगिरा नामक मुनीश्वर आचार्य स्पष्ट कहताभया ॥ प्र० ॥ क्या कहता

तत्रापरा ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्ववेदः शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्दो ज्योतिषमिति । अथ परा यया तदक्षरमधिगम्यते ५ ॥

भया ॥ उ० ॥ अङ्गिराउवाच "। द्वेविद्ये वेदितव्य इतिहस्म यद् ब्रह्मविदो वदन्ति"। दोनोंविद्याजाननेयोग्य हैं ऐसेप्रसिद्ध ब्रह्मवेत्ता कहतेहैं। अर्थात् दोनोंविद्या जाननेयोग्य हैं, इसप्रकार प्रसिद्ध जो वेदार्थके जाननेवाले परमार्थदर्शी ब्रह्मवेत्ता सो कहते हैं ॥ प्र० ॥ कौन वे दोनों विद्याहैं ॥ उ० ॥ "।पराचैवापराच"। । परा और अपरा हैं । एक परा, अर्थात् परमार्थ विद्या है। और दूसरी अपरा अर्थात् धर्म और अधर्म के साधन और तिनके फलको विषय करनेवाली विद्या है ॥ शङ्का ॥ "कस्मिन्नु भगवो विज्ञाते सर्वमिदं विज्ञातं भवतीति"। किसके जाननेसे सर्वका जाननेवाला होताहै। इसप्रकार शौनक मुनिने प्रश्नकिया है। तिसके उत्तर कहनेको योग्यहोते सन्ते भी अङ्गिरा मुनि "द्वेविद्ये वेदितव्ये"। दोनों विद्या जानने योग्यहैं। इत्यादिरूप वाक्यों से न पूछेहुये अर्थको कहते हैं सो योग्य नहीं ॥ स० ॥ यहदोष बने नहीं, क्योंकि प्रतिउत्तरको क्रमकी अपेक्षावाला होनेसे। और जिसकरके अपरा विद्या जो है सो निषेध करनेयोग्य अविद्या है। ताते तिसके विषयको न जानने से कुछ तत्त्व (वस्तु तिसका विषय) न जानाहुआ होताहै। इसकरके प्रथम पूर्वपक्षको निषेध करकेही पश्चात् सिद्धान्त कहनेको योग्य होता है। इस न्यायसे अङ्गिरामुनि प्रथम न पूछेहुये अर्थको कहते हैं ४ ॥

५ हे सौम्य ! पूर्व कही जो दो विद्या तिन दोनों में अपराविद्या कौनसी है तिसको श्रवणकरो "। तत्रापरा ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्ववेदः शिक्षाकल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्दो ज्योतिषमिति"। तहां ऋग्वेद यजुर्वेद सामवेद और अथर्ववेद, शिक्षा कल्प व्याकरण निरुक्त छन्द ज्योतिष, यह अपरा विद्या है। अर्थात् ऋग्यजु साम अथर्व यह चारवेद, और शिक्षा कल्प व्याकरण निरुक्त

(वेदकेनामोंका कोश) छन्द (पिङ्गल), और ज्योतिष, यह ६ वेदके अङ्गहैं। यह सर्व अपरा विद्याहै॥ और "अथ परा यया तदक्षरमधिगम्यते"। अब जिसकरके अक्षर (ब्रह्म) प्राप्तहोताहै सो पराविद्या है। अब यह पराविद्या कहते हैं, जिस विद्या करके सो अग्रिम छठे मन्त्रसे कहनेको हैं विशेषण जिसके ऐसा अक्षर (ब्रह्म) प्राप्तहोय है, [जिसकरके अविद्याकी निवृत्तिही परब्रह्मकी प्राप्ति कहते हैं, भिन्न अर्थ नहीं, ताते परब्रह्मकी प्राप्ति और अधिगम शब्दके अर्थका भेद नहीं] सो पराविद्या है॥ ननु [षट् अङ्गसहित वेदोंको अपरविद्याकरके कहने से तिनसे भिन्नवेदसे बाहर होनेकरके ब्रह्मविद्याको पराविद्यापना नहीं सम्भवैहै, इसप्रकार वादी आक्षेप करता है। यहां यह अर्थ है कि विद्याको वेदसे बाहरपने के हुये, तिसअर्थ वाले उपनिषदों कोभी ऋग्वेदादिकों से बाहरपना अर्थात् वेदसे बाह्यपना प्राप्त होवेगा] ब्रह्मविद्या जब ऋग्वेदादिकोंसे बाहर है तब सो पराविद्या कैसे होवेगी। और मोक्षकी साधन कैसे होवेगी और जिसकरके 'जो वेदसे बाह्य स्मृतियां हैं, और जो कोई कुदृष्टियां हैं सो जिसकरके मरणको पायके नरक में स्थित करने वाली कहीगई हैं, एतदर्थ वे सर्व निष्फल हैं, इसप्रकार स्मृति विषे कहाहै एतदर्थ कुदृष्टिरूप होने से, और निष्फल होनेसे सो ब्रह्मविद्या अनादर करनेको योग्य होवेगी। और उपनिषदों को ऋग्वेदादिकों से बाह्यपना सिद्धहोवेगा। और जब सो ब्रह्मविद्या ऋग्वेदादिरूप है, तब "अथपरा" । अबपरा । इत्यादिरूप वाक्य ते तिसका ऋग्वेदादिकों से पृथक्करना व्यर्थ है। यह कथन बनैनहीं। [उपनिषदोंको वेदसे बाह्य होनेकरके विद्याका तिनसे भिन्नकरना नहीं सम्भवता है, किन्तु यहां वस्तुको विषयकरनेवाले वैदिक ज्ञानभी शब्दकेसमूहरूप वेदसे अधिकताके अभिप्रायसे विद्याका भिन्न करना है इस अभिप्राय से कहते हैं] क्योंकि यहां जानने योग्य विषयके विज्ञानको पराविद्या शब्द से कहने को इच्छित है ताते। और जिसकरके यहां उपनिषदों से जानने योग्य अक्षर

यत्तदद्रश्यमग्राह्यमगोत्रमवर्णमचक्षुःश्रोत्रं तदपाणि-पादम् । नित्यं विभुं सर्व्वगतं सुसूक्ष्मं तदव्ययं यद्भूत-योनिं परिपश्यन्ति धीराः ६ ॥

ब्रह्म को विषयकरनेवाला विज्ञान पराविद्याहै, इसप्रकार मुख्य-ताकरके कहने को इच्छितहै । और उपनिषद् शब्दका समूह नहीं और वेद शब्दसे तो सर्व ठिकाने शब्द समूह कहने को इच्छित है । अक्षर (ब्रह्म) को शब्दके समूह से जानने योग्य होनेसे भी गुरुके समीप जाने आदिक अन्य उपाय विना ' और वैराग्यरूप अन्य प्रयत्न विना अक्षरका विज्ञान संभवता नहीं । एतदर्थ ब्रह्म-विद्याका पृथक् करना और यह परा विद्याहै, यह कथन बने है५॥

६ हे सौम्य ! जैसे विधिका विषय जो वाक्यार्थ ज्ञान तिसके कालसे अन्यकाल विषे कर्त्ता आदिक अनेक कारकोंकी समाप्ति के द्वार से अग्निहोत्रादिरूप अनुष्ठान करने योग्य अर्थ है । तैसे यहां पराविद्या के विषयविषे नहीं । किन्तु यहां तो ज्ञानने रूप अर्थ वाक्यार्थ ज्ञानके समकाल विषेही तिस अवधिको प्राप्तहोता है, क्योंकि केवलशब्दसे प्रकाशकिये अर्थ के ज्ञानमात्रकी ही निष्ठा से भिन्न अनुष्ठानका अभावहै ताते । एतदर्थ यहां अपराविद्याको षष्ठवाक्यसे लेके नवमवाक्यके पर्यन्त विशेषणों सहित अक्षर से युक्तकरे हैं "यत्तदद्रश्यमग्राह्यमगोत्रमवर्णमचक्षुः श्रोत्रं तदपाणि पादम्"। जो अद्रश्यहै अग्राह्यहै अगोत्रहै अवर्णहै अचक्षुश्रोत्रहै सो अपाणिपादहै। जो सो अद्रश्यहै [यहां 'जो' 'सो' इन शब्दों से अग्रिम कहनेका वस्तु, बुद्धिविषे रखके सिद्धवत् स्मरण करते हैं] अर्थात् सर्वज्ञानेन्द्रियोंका अविषयहै।और अग्राह्य है, अर्थात् कर्मेन्द्रियों का अविषय होनेसे ग्रहणकरने में आवता नहीं । और अगोत्रहै, अर्थात् गोत्र जो वंश तिससे रहितहै । अर्थ यह जो जिस करके सो अक्षर (ब्रह्म) वंशवालाहोय ऐसा तिसका कोई नहीं है। और जो वर्णन करते हैं ऐसे जो स्थूलपने आदिक वा शुक्लपने

आदिक गुणवान् वस्तुरूप शरीरादिक द्रव्य के धर्म हैं, सो वर्ण कहते हैं। सो वर्ण जिसको अविद्यमानहै, ऐसा जिसकरके अक्षर है तिसकरके सो 'अवर्ण है' और चक्षु और श्रोत्र जो हैं सो सर्व जीवों वा वस्तुओं के नाम और रूप विषयके ग्रहण विषे साधन (करण) हैं 'सो चक्षु और श्रोत्र जिसको विद्यमान नहीं' ऐसा जिसकरके अक्षर (ब्रह्म) है तिसकरके सो 'अचक्षुःश्रोत्रं' (चक्षु और श्रोत्र से रहितहै) है। [अप्राप्तके निषेध के प्रसंग से, यहां अक्षर शब्दको प्रधान (प्रकृति) रूप अर्थकी परता है, इसप्रकार शंकाकरने को योग्य नहीं है यह मानके कहते हैं] 'यःसर्वज्ञस्सर्ववित्' ।जो सर्वज्ञ है और सर्ववित् है। इत्यादि रूप इसही खण्ड के नवम मन्त्रविषे चेतनवान्पनेरूप विशेषणकरके ब्रह्मको संसारी जीवोंवत् चक्षु और श्रोत्रादिक साधनों से विषयों की साधकता प्राप्तभई, सो यहां 'अचक्षुःश्रोत्रं' ।अचक्षुः श्रोत्र। इन विशेषणों से निवारण करते हैं। क्योंकि 'पश्यत्यचक्षुः सश्रृणोत्यकर्णः' । सो (परमात्मा) चक्षुरहित हुआ देखताहै और कर्णरहित हुआ सुनताहै। इत्यादि विशेषणों को देखते हैं ताते। और 'सो' अक्षर (ब्रह्म) 'अपाणि पादहै' अर्थात् कर्मेन्द्रियों करके रहितहै। जिस करके इस प्रकार अग्राह्य और अग्राहकरूपहै तिसहीकरके "नित्यं विभुं सर्व्वगतं सुसूक्ष्मम्" । नित्य है विभुहै सर्वगतहै और अतिशय सूक्ष्म है 'सो' नित्य है, अर्थात् अविनाशी है। और ब्रह्मासे आदिलेके स्थावर पर्यन्त प्राणियों के भेदरूप विविध प्रकार से होतेहैं ताते 'विभुहै'। और 'सर्वगतहै' अर्थात् आकाशवत् सर्वत्र व्यापकहै। और (आकाशसेभी)अतिशय सूक्ष्महै, क्योंकि शब्दादिक स्थूलभावके कारणोंसे रहित है ताते। और शब्दादिक जो हैं सो आकाश और वायु आदिकों के उत्तरोत्तर स्थूलभावके कारण हैं, तिनके अभावसे सो अतिशय सूक्ष्महै और "तदव्ययंयद्भूतयोनिम्परिपश्यन्ति धीराः" ।सो अव्ययहै भूतयोनि है, जिसको धीर, सर्वओरसे देखते हैं। 'सो' अव्यय है, अर्थात् उक्त धर्म-

यथोर्णनाभिःसृजते गृह्णते च यथा पृथिव्यामोषधयः सम्भवन्ति। यथासतःपुरुषात् केशलोमानितथाऽक्षरात् सम्भवतीहविश्वम् ७॥

वाला होनेसेही सो घटने बढ़ने रूप व्ययको पावता नहीं, ताते अव्यय है, और जिसकरके अङ्गरहित ब्रह्मको शरीरवत् अङ्गों के घटने रूप व्ययका होना सम्भवता नहीं। अथवा राजाओं के भण्डारवत् धनके भण्डारके घटने रूप व्ययभी सम्भवता नहीं। और गुण (बुद्धिरूप) द्वारवाला व्ययभी सम्भवता नहीं, क्योंकि गुणसे रहित है ताते। और सर्वका आत्माहै ताते, एतदर्थ अव्यय है और सो पृथिवीवत् स्थावर जङ्गमरूप भूतोंका कारणहै, एतदर्थ भूतयोनि है। जिस ऐसे लक्षणवाले अक्षर (ब्रह्म) को धीर जो विवेकी पुरुष हैं सो सर्व ओरसे सर्वका आत्मारूप देखते हैं॥ इसप्रकार अक्षर (ब्रह्म) जिस विद्यासे प्राप्तहोता है तिस विद्या को पराविद्या कहते हैं। यह पदों में समुदाय रूप वाक्यार्थ है॥ इति सिद्धम् ६॥

७ हे सौम्य! अपहीं छठे मन्त्रकरके "यद्भूतयोनिं" जो भूतयोनिरूप अर्थात् सर्वका कारणरूप अक्षर (ब्रह्म) है। इस प्रकार कहाहै, तहां अक्षर (ब्रह्म) का भूतयोनि (सर्वका कारण) पना कैसे है, इस अर्थको लौकिक प्रसिद्ध दृष्टांतों पूर्वक कहते हैं। "यथोर्णनाभिः सृजते गृह्णतेच" जैसे ऊर्णनाभि (मकड़ी) सृजता है पुनः ग्रहण करताहै। जैसे लोकविषे प्रसिद्ध ऊर्णनाभि (मकड़ी आदिक) नामवाला कोई एक कीट (कीड़ा) है, सो अन्य किसी भी कारण निमित्त की अपेक्षा न करके आपही अपने शरीरसे अभिन्न तन्तुओंको सृजता है, अर्थात् बाहरको प्रसारित करता है पुनः तिन प्रसारित किये तन्तुओंको ग्रहणकरता है, अर्थात् तिन तन्तुओंको अपने आत्मभावके ताईं प्राप्तकरताहै और [ब्रह्म जगत्का उपादान न ... है तिसमें ... है त ...

तपसा चीयते ब्रह्म ततोऽन्नमभिजायते । अन्नात् प्राणो मनः सत्यं लोकाः कर्मसु चामृतम् ८ ॥

स्वरूपवत्। इस अन्यरीतिके अनुमानका व्यभिचारीपना पृथिवी के दृष्टान्तसे कहते हैं] " यथा पृथिव्यामोषधयः सम्भवन्ति " । जैसे पृथिवी बिषे ओषधियां उपजती हैं । जैसे लोकमें पृथिवी बिषे तंडुल (धान्य) आदिलेके वृक्षादिरूप स्थावर पर्यन्त जो जो ओषधियां हैं, सो स्वरूप से अभिन्नही उत्पन्न होती हैं । और [जगत् जो है सो ब्रह्मरूप उपादानवाला नहीं, क्योंकि तिस से विलक्षण है ताते, और जो जिससे विलक्षण होता है सो तिस उपादानवाला होता नहीं । जैसे घट जो है सो तन्तुरूप उपादानवाला होता नहीं तैसे इस अनुमानकाभी पुरुष (शरीर)के सम्बन्धी केश लोमादिकों के दृष्टान्त से व्यभिचार कहते हैं] " यथा सतः पुरुषात् केशलोमानि " । जैसे जीवते पुरुषसे केश रोमउत्पन्न होतेहैं जिसप्रकार विद्यमान अर्थात् जीवते हुये पुरुष (शरीर) से केशरोम और नख यह विलक्षण उत्पन्न होतेहैं॥ हे सौम्य ! जिस प्रकार ये सर्व दृष्टान्तहैं। " तथाऽक्षरात् सम्भवतीह विश्वम् " । तैसे अक्षरसे इसबिषे विश्व उत्पन्न होताहै । तिसहीप्रकार अन्य निमित्तकी अपेक्षासे रहित छठेमन्त्रकरके कहे प्रमाण लक्षणवाले अक्षर (ब्रह्म) से इस संसारमण्डलबिषे विपरीत लक्षणवाला और समान लक्षण सम्पूर्ण विश्व (जगत्) उत्पन्न होता है । [ननु एकही दृष्टान्तबिषे उक्ततीनों अनुमानोंका व्यभिचारीपना मिलावनेको शक्य है इसप्रकारकी शङ्का करनेवालेप्रति कहते हैं] यहां अनेक दृष्टान्तोंका जो ग्रहणहै सो सुखपूर्वक भलीप्रकार जिज्ञासुप्रति अर्थके समुझावने के अर्थ है । और ब्रह्मसे उत्पन्न भया जो विश्व (जगत्) है सो इसही क्रमसे उत्पन्न होता है । बदरीफलकी मुष्टी के फेंकनेवत् नहीं, यह भाव है ॥ ७ ॥

हे सौम्य ! अब सृष्टिके क्रमकेनियमकेकहनेकी इच्छारूप अर्थ

वाला इस अष्टम मन्त्रका आरंभ करते हैं "। तपसा चीयते ब्रह्म ततोऽन्नमभिजायते "।। ब्रह्म तपसे स्थूलताको पावता है, तिस ब्रह्मसे अन्न होताहै। उत्पत्तिकी विधिका ज्ञाताहोनेकरके भूतयोनि अक्षररूपजो ब्रह्म सो ज्ञानरूप तपसे सृष्टिकी अनुकूलतारूपस्थूलताको पावता है, अर्थात् जलकणके पूर्णहुये क्षेत्रविषे अंकुरकेताईं उत्पन्न कराने को तैयारभये बीजवत्, और पुत्रकेताईं उत्पन्न करने को इच्छा करते हुये पितावत्, इस जगत्के ताईं उत्पन्न करनेको इच्छा करताहुआ अक्षररूप ब्रह्म हर्षसे पुष्टता (स्थूलता) को पावताहै। इसप्रकार सर्वज्ञपनेसे जगत्की उत्पत्ति स्थिति संहारकी शक्तिके ज्ञानवाला होनेकरके पुष्टताको प्राप्तभये तिस ब्रह्मसे यह भोगते हैं (आवरणादि रूपसे अनुभव करते हैं) इसप्रकारका, अथवा अन्नवत् सर्वके अर्थ साधारण होनेवाला, ऐसा जो संसारीजीवों का साधारण अव्याकृतिरूप अन्न, सो उपजावने की इच्छायुक्त प्रधान अवस्थारूप से उत्पन्न होताहै। और "। अन्नात्प्राणो मनः सत्यं लोकाःकर्मसुचामृतम् "।। तिस अन्न से प्राण मन सत्य सर्वलोक कर्मोविषे अमृत (होताहै)। तिस जगत् के सृजने की, अर्थात् [शुद्ध ब्रह्मको ईश्वरपनेका उपाधिरूप जो मायातत्त्व सो महाभूतादि रूपसे सर्वजीवोंकरके देखते हैं, एतदर्थ साधारण है। तथापि सो अनादि सिद्ध होने करके कैसे उत्पन्न होता है, यह शंका चित्तविषे ल्याय के कहते हैं। यहां यह रहस्य है कि कोई एक कहते हैं कि, कर्म के संस्काररूप अपूर्वके समवाय (मिलाप) रूप सम्बन्धवाला सूक्ष्मभूत अव्याकृत है। सो कहना बने नहीं। क्योंकि तिसको जीव जीवके प्रति भिन्न २ होने से ईश्वरपने की उपाधि होनेका असंभव है ताते। और सामान्यरूपसे संभवहुयेभी पृथिवी आदिक सामान्यरूपोंकी बाहुल्यताकरके प्रकृतिविषे एकताकी श्रुतिके विरोधकी प्राप्तिहै ताते। और जड़ महामायारूपसेही संभवहुयेभी तिसको कर्म के अपूर्व के समवाय करके युक्तपना न होवेगा। क्योंकि तिस महामायाको अकारकरूपहोनेसे और बुद्धि

आदिकों काही कारक (कर्त्ता) पनेका कथनहै ताते । और कारकके अवयवों बिषेही क्रियाके समवायसम्बन्धका अंगीकारहै ताते किंवा कार्यको अपने कारणका उपादानपना नहीं देखा है । एतदर्थ पट को तंतुके उपादानतावत्, अपञ्चीकृत भूतोंकी समष्टिरूप सूक्ष्म भूतोंको अपने कारण अपञ्चीकृत पंच महाभूतोंका उपादानपना न होवेगा । एतदर्थ महाभूतोंकी उत्पत्तिआदि संस्कारका आश्रय जो तीनगुणकी साम्य (ऐक्य) अवस्थारूप जो मायातत्त्व है सो यहां अव्याकृतादि शब्दोंका वाच्य अङ्गीकार करनेको योग्य है] इच्छायुक्त अवस्थावाले अव्याकृत (माया) रूप अन्न से, ब्रह्म के अर्थात् [पूर्व कल्पबिषे हिरण्यगर्भ भावकी प्राप्ति के निमित्त श्रेष्ठ उपासना और कर्म जिसने अनुष्ठान किया है, तिसके अनुग्रहार्थ माया उपाधिवाला ब्रह्म हिरण्यगर्भ अवस्थाके आकारसे होताहै । और तिस अवस्थाका अभिमानी सोकर्म और उपासनाका कर्त्ता जीव हिरण्यगर्भ करके कहते हैं, इस अभिप्रायसे यहां प्रतिपादन करते हैं] ज्ञानशक्ति और क्रियाशक्ति करके युक्त व्यष्टिरूप जगत् का साधारण समष्टिरूप सूत्रात्मा नामवाला] अविद्या काम कर्म और भूतों के समुदायरूप बीजका अंकुर जगत्का आत्मा, हिरण्य-गर्भरूप प्राण उत्पन्न होताभया । और तिस हिरण्यगर्भरूप प्राण से संकल्प विकल्प संशय और निश्चयरूप मन नामवाला अन्तः-करणादिकका उपादान अपञ्चीकृत भूतों का पञ्चक उत्पन्न होता है । और तिस संकल्पादि रूपवाले मनसे भी सत्य नामवाला आकाशादिक अपंचीकृत भूतोंका पंचक विराट् उत्पन्न होता है । और तिस सत्यनामवाले भूतों के पंचक से क्रम करके ब्रह्मांडरूप पृथिवीआदि सातलोक उत्पन्न होते हैं । औरतिन उत्पन्न भये लोकों बिषे मनुष्यादि प्राणियों के वर्ण और आश्रमके क्रमसे कर्म उत्पन्न होता है । और तिन निमित्तरूप कर्मोंबिषे कर्म्मजन्य फलरूप अमृ-त उत्पन्न होता है । और यावत्पर्यन्त शतकोटि कल्पनामेंभी कर्म्म ...ो पावते नहीं तावत् पर्यन्त तिनका फलभी नाशको पाव-

यः सर्व्वज्ञः सर्वविद्यस्य ज्ञानमयं तपः । तस्मादेतद्ब्रह्म नामरूपमन्नञ्चजायते ९ ॥

इति प्रथममुण्डकगतः प्रथमखण्डः ॥

ता नहीं । एतदर्थ इन कर्म्मों के फलको अमृत कहते हैं ॥ ८ ॥

हे सौम्य ! कथनाकियेहुये अर्थकोही संक्षेपसे कहनेकी इच्छावाला नवम मन्त्र सो आगे प्रतिपादन करने के अर्थको कहता है "यः सर्व्वज्ञः सर्व्वविद्यस्य ज्ञानमयं तपः" ।जो सर्वज्ञ है सर्ववित् है जिसका ज्ञानमय तपहै । जो उक्त लक्षणवाला अक्षर नाम करके परमात्मा सो सामान्य करके सर्वको जानता है, अर्थात् [यहांसमष्टिरूप मायानामक उपाधि सामान्य कहते हैं। तिससे सर्वको जानताहै याते सो सर्वज्ञहै] ताते सर्वज्ञहै ।और विशेष[यहांव्यष्टि रूप अविद्यानामक उपाधि विशेष कहते हैं] और तिसकरके उपाधिवाला हुआ उन जीवोंकरके सृजेहुये सर्व जगत्को जानता है ताते सर्ववित् है] करके सर्वको जानताहै एतदर्थ सर्ववित् है । और जिसका, ज्ञानरूप तप है, परिश्रमरूप नहीं अर्थात् [ननु, प्रजापतियों को तपकरके सृष्टिका स्रष्टापना प्रसिद्धहै, एतदर्थ स्रष्टापना विषे तपका अनुष्ठान कहनेको योग्यही है, परन्तु ईश्वरको स्रष्टापना विषे तपका अनुष्ठान कहने से संसारीपना प्राप्त होवेगा, यह आशङ्का विचारके कहते हैं । यहांयह अर्थ है कि सत्त्वगुण प्रधान माया और अज्ञाननामकजो विकारहै तिन उपाधिवाला उत्पन्नभया जो सर्व पदार्थों के जानने रूप ज्ञानस्वरूप विकार सो विकारही ईश्वरका तपहै, परन्तु प्रजापतियों के तपवत् क्लेशरूप तपनहीं] "तस्मादेतद्ब्रह्मनामरूपमन्नञ्चजायते" । तिससे यह ब्रह्मनाम रूप और अन्न उत्पन्न होता है । तिस उक्तलक्षणवाले सर्वज्ञ से यह कथनकिया हिरण्यगर्भ नामवाला ब्रह्म उत्पन्न होता है । और यह यज्ञदत्त है, यह देवदत्त है, यह विष्णुदत्तहै, इत्यादि नाम, और यह

अथ प्रथममुण्डके द्वितीयखण्ड आरभ्यते ॥

तदेतत्सत्यंमन्त्रेषुकर्म्माणिकवयोयान्यपश्यंस्तानित्रेतायांबहुधासन्ततानि । तान्याचरथनियतंसत्यकामा एषवःपन्थाःस्वकृतस्यलोके १ । १० ॥

शुक्ल(श्वेत) है, यहपीत है, यहरक्त(लाल) है, यह नीलहै, इत्यादि स्वरूपवाला रूप, और तंडुल यवादिरूप अन्न, प्रथम मन्त्रविषे उक्त क्रमसे उत्पन्नहोते हैं। इसप्रकार पूर्व मन्त्र से इस मन्त्रका अविरोधजानना ॥ ६ ॥

प्रथममुण्डकगतप्रथमखण्डकीभाषाटीका समाप्त ॥

प्रथममुण्डकगतद्वितीयखण्डकीभाषाटीकाका प्रारम्भ ॥

हे सौम्य ! (तत्रापरा ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्ववेदः) तहां ऋग् यजु साम अथर्व । इत्यादि रूप प्रथम खण्डके पंचम मन्त्र से षट् अंगोंसहित चार वेदरूप अपराविद्या कही। और (यत्तदद्रश्यं) । जो सावयव है। इत्यादि षष्ठ मन्त्रसे लेके (नामरूपमन्नञ्चजायते) । नाम रूप और अन्न उत्पन्न होता है । इस नवम मन्त्र पर्यन्त जो ग्रन्थ है तिस करके कहे लक्षणवाला जो अक्षर (ब्रह्म) है सो जिस विद्याकरके प्राप्तहोता है सो पराविद्या है। इसप्रकार विशेषणों सहित यह पराविद्या कही । याते पश्चात् इन दोनों विद्या के विषय (आधीन) जो संसार और मोक्ष है, सो विवेचनकरने को योग्य है, इस प्रयोजन के अर्थ अब उत्तर-ग्रन्थ का आरम्भ करते हैं, तिनमें कर्त्ता आदिक साधन क्रिया और फल के भेदरूप और उपादानरूप से अनादि, और ब्रह्मज्ञानहोने पूर्व अत्यन्त निवृत्ति के असम्भवसे अन्तरहित जो संसार है, सो

अपर विद्याका विषयहै। और सोई दुःखरूपहोने से सर्व शरीरधारी जीवोंकरके [एक जीववादी जो कहते हैं कि एक चैतन्य एकही अविद्यासे बद्धभया संसारको पावता है, और सोई कदाचित् मुक्त होताहै। और हम तुम आदिक जो जीवाभासहैं तिनको वन्ध और मोक्ष नहीं॥ सो पक्ष यहां जीवोंके बहुवचनकी सूचना से भाष्यकार स्वामीनें निषेध किया, क्योंकि वो एक जीववादी का मत श्रुतिसे वाह्य है ताते] त्यागने योग्य है। और नदीके प्रवाहवत् उच्छेद (नाश) रहित जो संसार है, तिसकी अत्यन्त निवृत्तिरूप और ब्रह्मसे अपृथक् होनेकरके, अनादि अनन्त अजर अमर (अपक्षयरहित, अविनाशी) अभय शुद्धप्रसन्न, और अपने आप विषे स्थित परमानन्दरूप अद्वैत जो मोक्षहै अर्थात् (सुषुप्ति अवस्था विषेभी क्रियाकारक और फलकी निवृत्ति होती है, तिस निवृत्तिसे ज्ञानपूर्वक जो निवृत्तिहै तिसकी विलक्षणता कहते हैं, यहां यह अर्थ है कि, अपनी उपाधिरूप जो अविद्या तिसके कार्य सम्बन्धी अविद्याकी निवृत्ति करके जो आत्यन्तिकी निवृत्ति सो विद्या का फल है) सो परविद्या का विषयहै। तिनमें आदिविषे प्रथम [अपर और पर दोनों विद्याके विषयको देखायके अब प्रथम अपर विद्याके विषयको देखावने विषे श्रुतिका अभिप्राय कहते हैं] अपर विद्याका जो विषयहै तिसके देखावने के अर्थ इस द्वितीयखंड का आरम्भहै। क्योंकि तिस अपर विद्याके विषयको देखावने से तिस विषे वैराग्य होनेका सम्भव होताहै ताते। और तिसही प्रकार आगे इसही उपनिषद् विषे "परीक्ष्य लोकान् कर्मरचितान्"। लोकों को कर्मरचित जानके। इत्यादि इसही खण्डकी बारहवीं श्रुति से कहेंगे। और जिसकरके न देखेहुये पदार्थकी परीक्षा (ज्ञान) सम्भवता नहीं, तिसकरके उस अपर विद्याके विषयको देखावते हुये कहते हैं "। तदेतत्सत्यं "। सो यह सत्य है। ॥ प्र०॥ सो क्या है॥ उ०॥ "। मन्त्रेषु कर्म्माणिकवयोयान्यपश्यंस्तानित्रेतायां बहुधासन्ततानि "। मन्त्रों विषे कर्म है जिनको कवि देखतेभये

सो त्रेता बिषे बहुत प्रकार से प्रवृत्तभये हैं। ऋग्वेदादि नामवाले मन्त्रोंबिषे जो अग्निहोत्रादि कर्महैं, और मन्त्रों करकेही प्रकाशित भये जिन कर्मोंको वशिष्ठादि कवि (बुद्धिमान्) देखतेभये। ऐसा जो कर्मोंका समुदाय है सो सत्य है अर्थात् [इष्ट फल का साधन होनेसे अथवा अनिष्टफलका साधन होनेसे, वेदकरके जो कर्म बोधित किये हैं, तिन कर्मोंको प्रतिबन्धके अविद्यमान हुये तिन तिन फलोंके साधनहोने का अव्यभिचारहै सोई तिस कर्म का सत्यपनाहै, स्वरूपसे अबाधहोने रूप सत्यपना नहीं। क्योंकि "प्लवाह्येते अदृढाः" । जिसकरके यह प्लव । अर्थात् फलसहित विनाशी कर्मवाले हैं—इत्यादि यह इसही खण्डके सातवें मन्त्र करके निन्दा कियेहुये ताते। और कर्मोंके स्वरूपसेही अबाध्यता रूप सत्यताके होनेसे, स्वप्नकी कामनावत् सफल क्रियाकी निर्वाहकता रूप अबाध्यता घटेहै, इस अभिप्राय से कहते हैं] क्योंकि पुरुषार्थका अर्थात् [धर्म अर्थ काम और मोक्ष, इन चारोंका नाम पुरुषार्थ है, परन्तु यहां मोक्षको छोड़के अन्य तीनों का ग्रहण है ऐसा जानना] अव्यभिचारी साधनहै ताते। और वो वेद विदित और ऋषियों करके देखेहुये कर्म तिनके संयोगमयहोत्र अध्वर्यव और उद्गात्र, अर्थात् [ऋग्वेदबिषे विधानकिया पदार्थ तिसको होत्र कहते हैं, और यजुर्वेदबिषे विधानकिया पदार्थ तिसको अध्वर्यव कहते हैं, और सामवेदबिषे विधानकिये पदार्थ तिनको औद्गात्र कहते हैं, इन तीन प्रकार के कर्मरूप त्रेताबिषे] इन तीनप्रकार स्वरूप आधाररूप त्रेताविषे, अथवा त्रेतायुगबिषे कर्मिष्ठ लोगों करके कियेहुये, बहुत प्रकारसे प्रवृत्तभये। एतदर्थ हे लोको! "तान्याचरथनियतं सत्यकामा एषवः पन्थाः स्वकृतस्य लोके"। सत्यकामहुये तिनको नित्य आचरणकरो यह आपको आप करके आचरण कियेहुये कर्मके लोकबिषे मार्गहै। आप सत्यकाम हुये अर्थात् जैसा विद्यमान है तैसे कर्म फलकी इच्छावाले हुये तिन कर्मोंको नित्यनिर्वाह करो। जैसे नगरकी प्राप्तिबिषे

यदा लेलायते ह्यर्चिः समिद्धे हव्यवाहने। तदाऽऽज्य भागावन्तरेणाहुतीः प्रतिपादयेच्छ्रद्धया हुतम् २।११॥

निमित्तरूप मार्गका चलना है। तैसेही यह आपको आपकरके आचरण किये कर्म सो अपने फलरूप लोकविषे, अर्थात् कर्मके फलकी प्राप्तिविषे निमित्तरूप मार्ग है, अर्थात् जो जो अग्निहो- आदिरूप ऋग्वेदादि तीनों वेदों विषे प्रतिपादन किये कर्म हैं; सो यह मार्ग (अवश्य फलकी प्राप्ति का साधन) है १।१०॥

हे सौम्य! तिन (कर्मों) में से आदिविषे तहां पर्यन्त, अर्थात् अन्तःकरणकी शुद्धिपर्यन्त अग्निहोत्रादि देखावने के अर्थ कहेहैं, क्योंकि अग्निहोत्र सर्वकर्मों के मध्य प्रथम है ताते॥ प्र०॥ सो अग्निहोत्र कैसे होता है॥ उ०॥ " यदालेलायते ह्यर्चिःसमिद्धे हव्यवाहने "। जब समिधाओं करके प्रज्वलितभये अग्निविषे ज्वाला उठती है। जिससमय अर्थात् प्रातःकाल और सायङ्काल में सर्वओर से समिधा करके प्रज्वलित भये अग्निविषे ज्वाला उठती है। " तदाऽज्यभागावन्तरेणाहुतीःप्रतिपादयेच्छ्रद्धयाहुतम् " । तब घृतके भाग मध्यरूप (कुण्ड) विषे आहुतियों को डालना श्रद्धासे होम किया है। जिस समय उठतीहुई ज्वालामें दर्श और पूर्णमासरूप दोनों घृतके भागोंको मध्य कुण्डविषे देवताओंका उद्देश करके आहुतियों को डालना॥ शं०॥ ["सूर्यायस्वाहा, प्रजापतयेस्वाहा" इसप्रकार प्रातःकाल विषे। और "अग्नयेस्वाहा और प्रजापतयेस्वाहा" इसप्रकार सायङ्काल विषे, यह दोनों आहुतियां प्रसिद्ध हैं। तब यहां श्रुतिविषे आहुति शब्दको बहुवचन कैसे है॥ स०॥ अनेक दिवस पर्यन्त जो आहुतिको डालनेका अनुष्ठानहै तिसकी अपेक्षासे यहां श्रुतिविषे आहुति शब्दको बहुवचन है] यह सम्यक् प्रकार आहुति डालनेरूप कर्म परलोककी प्राप्तिके और मार्ग है। और श्रद्धा से जो हवन कियाहै तिसका

यस्याग्निहोत्रमदर्शमपौर्णमासमचातुर्मास्यमनाग्रयणमतिथिवर्जितञ्च । अहुतमवैश्वदेवमविधिनाहुतमासप्तमांस्तस्य लोकान् हिनस्ति २ । १२ ॥

सम्यक् प्रकार आचरण दुष्कर है, अर्थात् तिसविषे विपत्तियां अनेक हैं सो देखावते हैं २ । ११ ॥

हे गुरो! अग्निहोत्रकर्मकैसेदुष्करहै ॥ उ० ॥ "यस्याग्निहोत्रमदर्शमपौर्णमासमचातुर्मास्यमनाग्रयणमतिथिवर्जितञ्च" । जिसका अग्निहोत्र दर्शरहित, पौर्णमास रहित, चातुर्मास्यरहित, आग्रयण रहित, अतिथि रहितहै, अर्थात् जिसअग्निहोत्रीका अग्निहोत्रदर्श नामक कर्म से रहितहै, और पौर्णमास नामक कर्म से रहितहै, और चातुर्मास्य नामक कर्म से रहितहै, और शरदादि कालविषे [नवीन उत्पन्नभये जे अन्नादिक तिनसे करनेयोग्य जो] आग्रयण नामक कर्म तिनसे रहितहै । और तैसेही जिसका अग्निहोत्र अतिथि से रहित है, अर्थात् जिस अग्निहोत्री के अग्निहोत्र में नित्यनित्य अतिथिका पूजन कियाजावे नहीं । और "अहुतमवैश्वदेवमविधिना हुतमासप्तमांस्तस्य लोकान् हिनस्ति" होम कियाहोयनहीं, वैश्वदेवसे रहित, अविधि से होम कियाहै, सप्तलोक सहित नाश करैहै । जिसके अग्निहोत्र कालमें सम्यक् प्रकार होम किया होता नहीं; और जिसका अग्निहोत्र वैश्वदेव नामवाले कर्मसे रहित है, और जिसने हवन किया है तथापि सो अविधि से कियाहै सो अग्निहोत्र तिस अग्निहोत्रीरूप कर्त्ता के सप्तमलोक सहित जो लोक हैं तिन लोकोंको नाशकरनेवत् नाश करे है क्योंकि उक्त कर्मका श्रममात्रही फलहै ताते । और जिसकरके कर्मोंको सम्यक् करनेसे उनकर्मोंके परिणामरूप से पृथिवी आदि सत्यपर्यन्त सप्तलोकरूप फल (जो सप्तव्याहृतियों के नामसे प्रख्यात हैं) सो प्राप्त होते हैं । सो लोक उक्तप्रकारके अग्निहोत्रादि कर्म से प्राप्त होने के अयोग्य होने से नाशहुयेवत् होतेहैं, अर्थात् उक्तप्रकारके अग्निहोत्रादि कर्मोंसे

काली कराली च मनोजवा च सुलोहिता या च सुधूम्रवर्णा। स्फुलिङ्गिनी विश्वरूपी च देवी लेलायमाना इति सप्तजिह्वा ४ । १३॥

एतेषु यश्चरते भ्राजमानेषु यथाकालं चाहुतयो ह्याददायन् । तन्नयन्त्येताः सूर्य्यस्य रश्मयो यत्र देवानां पतिरेकोधिवासः ५ । १४ ॥

उक्त सातलोकों में से किसीकीभी प्राप्ति होती नहीं । और परिश्रममात्र तो अव्यभिचारतासे भयाही है, एतदर्थ उनलोकों को नाशकरे है ऐसा कहा है॥ अथवा पिण्डदानादिरूप अनुग्रहसे सम्बन्धको प्राप्तभये [यजमान जोहै सो पिता आदि तीनों का पिंड उदकके दानसे उपकारकहै, और पुत्रादितीनोंका अन्नवस्त्रादिकों के दानसे उपकार करता है । एतदर्थ यहां मध्यवर्त्ती यजमान से सम्बन्धको प्राप्तभये पूर्वले और पिछले तीन तीन ग्रहण करते हैं ऐसा कहतेहैं] पिता, पितामह, प्रपितामह और पुत्र, पौत्र, प्रपौत्र जो आपसहित सातलोकहैं, सो उक्तप्रकारके अग्निहोत्रादि कर्म से अपने उपकारके करनेवाले होते नहीं ॥ एतदर्थ नाश होते हैं ऐसा कहते हैं । इस उक्तरीतिसे अग्निहोत्रादि कर्मसे उपलक्षित जो कर्म सो दुष्करहैं ३ । १२ ॥

हे सौम्य ! "काली कराली च मनोजवा च सुलोहिता या च सुधूम्रवर्णा" । काली और कराली पुनः मनोजवा, और पुनः सुलोहिता और जो सुधूम्रवर्णा । और "स्फुलिङ्गिनी विश्वरूपी च देवी लेलायमाना इति सप्तजिह्वा" । स्फुलिंगिनी और विश्वरूपी, पुनः देवी, यह सात जलती (प्रज्वलित) हुई ज्वालारूप अग्निकी जिह्वा हैं । सो अग्निको हवन किये द्रव्यके ग्रसन करने के अर्थ उक्त सप्तजिह्वा हैं । इति सिद्धम् ४ । १३ ॥

हे सौम्य ! "एतेषु यश्चरते भ्राजमानेषु यथाकालं चाहुतयो ह्याददायन्" । इन प्रकाशमान विषे जो यथाकाल आहुतियों को

एह्येहीति तमाहुतयः सुवर्चसः सूर्य्यस्य रश्मिभिर्यजमानं वहन्ति । प्रियां वाचामभिवदन्त्योऽर्चयन्त्य एष वः पुण्यः सुकृतो ब्रह्मलोकः ६ । १५ ॥

देताहुआ आचरता है । इन प्रकाशमान अग्निकी जिह्वा के भेदों बिषे जो अग्निहोत्रका कर्त्ता कालके विभागानुसार अग्निहोत्रादि रूप कर्मको करता है "तन्नयन्त्येताः सूर्य्यस्य रश्मयो यत्र देवानां पतिरेकोधिवासः" । तिसको यह ग्रहण करती हुई किरणरूप होके प्राप्त करेहै जहां एक देवताओंका पति निवास करता है । तिस यजमानको यह यजमान करके करीगई आहुतियां ग्रहण करती हुई सूर्य्यकी किरणरूप होके तिन किरणरूप द्वारसे तिस यजमानको तिस स्वर्गविषे प्राप्त करे हैं ॥ प्र० ॥ किस स्वर्ग विषे प्राप्त करे हैं ॥ उ० ॥ जहां एक देवताओं का पति इन्द्र निवास करता है ५ । १४ ॥

हे सौम्य ! सो आहुतियां सूर्य्यकी किरणों से यजमानको स्वर्ग बिषे जिस प्रकार प्राप्त करती हैं तिसको श्रवण करो "एह्येहीति तमाहुतयः सुवर्चसःसूर्य्यस्यरश्मिभिर्यजमानं वहन्ति" । वे आहुतियां प्रकाशमान हुई तिस यजमानको सूर्य्यकी किरणों द्वारा लेजाती हैं । और कहती हैं ॥ प्र० ॥ क्या कहती हैं ॥ उ० ॥ "प्रियांवाचामभिवदन्त्योऽर्चयन्त्य एष वः पुण्यः सुकृतो ब्रह्मलोकः" । पूजन करतीहुई प्रियवाणी कोकहती हैं कि यह आपका पुण्य रूप सुकृतका फल ब्रह्मलोकहे ॥ अथवा सो आहुतियां आवो २ ऐसे बोलावती हुई और प्रकाशमान और जैसे ब्रह्मलोक पुण्यका फलरूप है, तैसा यह आपका पुण्यरूप सुकृत का फलरूप ब्रह्मलोक (स्वर्ग) है इसप्रकार प्रियवाणी को कहती हुई और पूजन करती हुई तिस यजमान को सूर्य्यकी किरणोंरूपी द्वार मार्ग से लेजाती हैं ६ । १५ ॥

हे सौम्य ! अब यह उपासनारहित केवलकर्म्म जो है सो जिस

प्लवाह्येते अदृढा यज्ञरूपा अष्टादशोक्तमवरं येषु कर्म। एतच्छ्रेयो येऽभिनन्दन्ति मूढा जरां मृत्युं पुनरेवापि यान्ति ७। १६॥

करके उक्त फलवाला है, और अविद्या काम और क्रियाका कार्य है, एतदर्थ असाररूप और दुःखका कारण है, इसप्रकार तिन केवल कर्म्मोंकी निंदा वेदभगवान् करते हैं "। प्लवाह्येते अदृढायज्ञरूपा अष्टादशोक्तमवरंयेषुकर्म्म "। यह यज्ञके निर्वाहक अष्टादश अदृढ़ कर्मके आश्रयहैं और तिसविषे अश्रेष्ठ कर्म्म हैं। अर्थात् जिस करके यह यज्ञके निर्वाहक सोलह ऋत्विक् यजमानकी स्त्री और यजमान इस भेद से अष्टादश १८ संख्यावाले हैं सो अदृढ़ (अस्थिर) इस कर्म्म के आश्रय हैं, इसप्रकार वेदने कहाहै और जिन अष्टादश आश्रयों विषे उपासनारहित होनेसे अश्रेष्ठ केवल कर्म है। एतदर्थ उन अश्रेष्ठ (निकृष्ट) कर्मके आश्रयरूप अष्टादश संख्यावालेको अस्थिर और विनाशवान् होनेसे तिन्होंकरके साध्य जो कर्म सो फलसहित विनाश को प्राप्त होतेहैं जैसे दूध और दधि आदिकों के आश्रयरूप मृत्तिका के पात्रके विनाश से तदाश्रितों का विनाश होता है, तैसेही तिन केवल कर्म के आश्रय फल स्वर्गरूपस्थान विनाश होता है। अर्थात् केवल कर्म और तिनके फल यह दोनों विनाशवान् हैं। जिस करके यह ऐसे हैं तिसही करके "। एतच्छ्रेयोयेऽभिनन्दन्ति मूढाजरांमृत्युंपुनरेवापियान्ति "। जो मूढ़ यह कर्म श्रेय है ऐसे हर्षको प्राप्तहोते हैं सो फेरभी जरा और मृत्युको पावते हैं। जो अविवेकी मूढ़पुरुष, यह कर्म श्रेय (मोक्षका साधन) है ऐसे जानके हर्षको प्राप्त होते हैं सो थोड़े कालपर्यन्त स्वर्गविषे स्थितहोयके फिर भी जरा मृत्युरूप संसार कोही पावतेहैं। अर्थात् उनका आवागमन छूटता नहीं ७। १६॥

हे सौम्य! वे मूढ़ "। अविद्यायामन्तरे वर्त्तमानाः स्वयंधीराः पण्डितम्मन्यमानाः "। अविद्याके अन्तर वर्त्तमान हुये हमहीं बुद्धि-

अविद्यायामन्तरे वर्त्तमानाः स्वयंधीराः पण्डितम्म न्यमानाः। जङ्घन्यमानाः परियन्ति मूढा अन्धेनैव नीयमाना यथाऽन्धाः ८ । १७ ॥

अविद्यायां बहुधा वर्त्तमाना वयं कृतार्था इत्यभिमन्यन्ति बालाः। यत्कर्म्मिणो न प्रवेदयन्ति रागात्तेनातुराः क्षीणलोकाश्च्यवन्ते ९ । १८ ॥

मान् पण्डित हैं ऐसे मानतेहैं । वे केवल कर्मकेही आश्रय श्रेयको माननेवाले मूढ़ अविद्याके भीतर वर्त्तमान हुये, अर्थात् अत्यन्त अविवेकयुक्तहुये, और तत्त्वदर्शी आचार्यों के उपदेशकी अपेक्षाके विना अपनेही मनकरके, हमहीं बुद्धिमान् और हमहीं जानने योग्य वस्तुके जाननेवाले पण्डितहैं, इसप्रकार आपको मानतेहैं । "जंघन्यमानाः परियन्ति मूढा अन्धेनैव नीयमाना यथाऽन्धाः" । मूढ़ अत्यन्त पीड़ाको पावतेहुये सर्व ओरसे भ्रमतेहैं, जैसे अन्धेकर के प्राप्त किया अन्धा (गिरताहै) । सो मूढ़पुरुष जरा रोगादि अनेक अनर्थ के समूहों करके ये अत्यन्त खेदको प्राप्तहोते हुये सर्वओर से भ्रमते हैं, जैसे लोकबिषे अन्धे (चक्षुरहित) पुरुषकरके प्राप्त किये जे मार्गके न देखनेवाले अन्ध (चक्षुविहीन) पुरुष गर्त कंटकादि विषमस्थान बिषे गिरते और कष्ट पावते हैं, तैसे वो मूढ़ अविवेकी कर्मी पुरुषभी संसाररूप अन्धकूप में गिरके कष्टपावते हैं । इति सिद्धम् ८ । १७ ॥

हे सौम्य! "अविद्यायां बहुधा वर्त्तमाना वयं कृतार्था इत्यभिमन्यन्ति बालाः" । बालक अविद्या बिषे बहुतप्रकारसे वर्त्तमानहुये हमहीं कृतार्थ हैं ऐसे अभिमानको करतेहैं । अज्ञानीरूप जो बालक (मूर्ख) हैं सो अविद्या बिषे बहुतप्रकार से वर्त्तमानहुये, हमहीं कृतार्थ, अर्थात् प्रयोजनको प्राप्तहुये हैं, इसप्रकार अभिमानको करतेहैं। और "यत्कर्मिणो न प्रवेदयन्ति रागात्तेनातुराः क्षीणलो-[illegible]श्च्यवन्ते" । जाते कर्मिष्ठ पुरुष रागसे तिस करके आतुर हुये

इष्टापूर्त्तं मन्यमाना वरिष्ठं नान्यच्छ्रेयो वेदयन्ते प्रमूढाः। नाकस्य पृष्ठे ते सुकृतेऽनुभूत्वेमं लोकं हीनतरञ्चाविशन्ति १० । १६ ॥

क्षीणलोक होतेहैं। जिसकरके ऐसे कर्म करने वाले पुरुष कर्मफलके रागसे होता जो अपना तिरस्कार तिसके निमित्तको जानते नहीं तिसकारणसे दुःखसे आतुरहुये क्षीणभयाहै कर्मका फलरूप लोक जिसका, ऐसे हुये स्वर्गलोक से गिरतेहैं ६ । १८ ॥

हे सौम्य ! "इष्टापूर्त्तं मन्यमाना वरिष्ठं नान्यच्छ्रेयो वेदयन्ते प्रमूढाः"। प्रमूढ़ इष्ट औरपूर्त्तको मुख्य जानतेहुये अन्यश्रेयको जानते नहीं। पुत्र पशु और स्त्री आदिकों विषे प्रमादको प्राप्तहोने करके जो मूढ़, इष्ट कहिये जो यज्ञादिरूप श्रुतिकरके प्रतिपाद्यकर्म्म हैं औरपूर्त्त कहिये वापी कूप तड़ाग आराम धर्मशाला आदि निर्माण करने यह स्मृतिप्रतिपाद्य कर्म्महैं, तिन्होंको यही अतिशय करके मुख्यपुरुपार्थ (मोक्ष) कासाधनहै,इसप्रकार चिन्तन करतेहुयेअन्य जो आत्मज्ञानसंज्ञक परम श्रेयका साधन है तिसको तो जानते ही नहीं॥ हे सौम्य ! ऐसा जे परम पुरुषार्थसाधक साक्षात् आत्मज्ञान तिसको न जाननेवाले जे मूढ़ हैं "नाकस्यपृष्ठे ते सुकृतेऽनुभूत्वेमं लोकं हीनतरञ्चाविशन्ति"। सो स्वर्गके ऊपर (अयन) सुकृतके (फलको) अनुभव करके (पुनः) इस लोकको वा अतिशय हीन लोकको पावते हैं। सो स्वर्गलोक ऊपर विद्यमान दिव्य भोगों के स्थान विषे अपने सुकृत कर्म के फलको साक्षात् अनुभव करके पुनः इस मनुष्यशरीररूपी लोकको अथवा इस मनुष्य शरीररूपी लोक से अतिशय हीन तिर्यक् (पक्षी) श्वान शूकरादि नारकी शरीररूप लोकको शेष रहे अपने कर्म्मानुसार पावते हैं।

योनिमन्ये प्रपद्यन्ते शरीरात्वायदेहिनः। स्थाणुमन्येन संयान्ति यथाकर्म यथाश्रुतम् ; ॥ १० । १६ ॥

हे सौम्य ! [उक्त प्रकार केवल कर्मिष्ठों के फलको कहके, अब

तपः श्रद्धेयेह्युपवसन्त्यरण्ये शान्ताविद्वांसो भैक्ष्यचर्यां चरन्तः । सूर्य्यद्वारेण ते विरजाः प्रयान्ति यत्रामृतः सपुरुषोह्यव्ययात्मा ११ । २० ॥

सगुणब्रह्मकी उपासना सहित आश्रमके कर्मकरके युक्त पुरुषोंके संसारगोचरही फलको देखावतेहैं] "। तपःश्रद्धेयेह्युपवसन्त्यरण्ये शान्ता विद्वांसो भैक्ष्यचर्य्यां चरन्तः" । जो शान्त विद्वान् भिक्षाके अन्नको भोजनकरतेहुये अरण्यविषे तप और श्रद्धाको सेवन करतेहैं । जो केवल कर्म करनेवाले से अन्य उपासनायुक्त संन्यासी औरवानप्रस्थ और जो शान्त (जितेंद्रिय ब्रह्मचारी) विद्वान् (उपासनाप्रधान गृहस्थ) भिक्षान्नको भोजन करतेहुये संग्रहके अभावसे स्त्रीआदिक विक्षेपकारी जनसमूहोंसेरहित अरण्यविषे वर्त्तमान हुये अपने आश्रमयोग्य शास्त्रविहित कर्मरूप तप और हिरण्यगर्भादिकोंको विषयकरनेवाली । उपासनारूप श्रद्धा इन दोनोंको । यथाविधि सेवनकरते हैं । "। सूर्यद्वारेणतेविरजाः प्रयान्ति यत्रामृतः सपुरुषोह्यव्ययात्मा" । सो सूर्यद्वारसे विरजहुये जाते हैं जिस बिषे अमृतरूप सो अविनाशी स्वभाववाला स्थित पुरुष है । सो सूर्य्य करके उपलक्षित जे उत्तरायणरूप द्वार तिस द्वारसे विरज हुये, अर्थात् मानो पुण्यपाप कर्मरूप मलसे रहितहुयेहोवें तैसेहुये, तिसबिषे जातेहैं, कि जिस सत्यलोकादिकोंबिषे अमृतस्वरूप सो प्रथमउत्पन्न भया और अविनाशी स्वभाववाला, अर्थात् यावत्पर्यन्त संसारहै तावत्पर्यन्त रहनेवाला हिरण्यगर्भरूप पुरुषहै ॥ हे सौम्य ! यहांपर्यन्ततो अपराविद्याके आश्रय प्राप्तहोने योग्य संसारकी गतियां हैं । कई एक पुरुष निश्चय करके, ब्रह्मलोककी प्राप्तिरूप मोक्षकी इच्छा करते नहीं, किन्तु "इहैव सर्वे प्रविलीयन्ते कामास्ते सर्वगं सर्वतःप्राप्य धीरा युक्तात्मानःसर्वमेवाविशन्तीति" यहांही अर्थात् मुक्त पुरुषोंके यहांही सर्वकामके अभावको और सर्वात्मभावको श्रुतियां देखावे हैं । और ब्रह्मलोककी प्राप्तितो देशसे परिच्छिन्न फल हैं,

परीक्ष्य लोकान् कर्म्मैरचितान् ब्राह्मणोनिर्वेदमाया न्नास्त्यकृतः कृतेन॥ तद्विज्ञानार्थं सगुरुमेवाभिगच्छेत् स मित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम्॥ १२। २१॥

अर्थात् किसीएक देशविषे हैं, ताते मोक्ष नहीं है, इसप्रकार यहां कहतेहैं] तिनकेसर्वकाम अभाव होते हैं। और वो धीरपुरुष एकाग्र चित्तवाले हुये सर्वगत व्यापक वस्तुको सर्वओरसे पायके सर्व्वा-त्मभावको पावते हैं, इत्यादि श्रुतियों से और प्रसंगसे यह जो ऊपर कहीगई सो अपरविद्याके आश्रित मतिहै, इस प्रकार जाना-जाता है। और जिसकरके यह प्रसंग, अपर विद्याके प्रसंगके प्रवृत्त हुये अकस्मात् प्रवृत्तभयाहै, एतदर्थ यह मोक्षका प्रसंग नहीं है। और पुण्यपापरूप कर्मकी क्षीणतारूप विरजपना जो कहाहै सो तो आपेक्षिकहै, एतदर्थ समस्त साध्य और साधनरूप क्रिया कारक और फलके भेदसें भिन्न हिरण्यगर्भकी प्राप्तिपर्यन्त जो द्वैतहै इत-नाही अपर विद्याका कार्य है। तैसेंहुये स्थावरादिरूप संसारकी गतिको उल्लंघन करनेवाले पुरुषोंको "ब्रह्मा विश्वसृजो धर्मो महा-नव्यक्तमेवच। उत्तमां सात्विकीमेतां गतिमाहुर्मनीषिण इति", [ब्रह्मा, मरीच्यादि प्रजापति, यम, महत्तत्त्व (सूत्रात्मा) और अव्य-क्त (त्रिगुणात्मक प्रकृति) रूप इस गतिको पंडितजन सात्विक उत्तमगति कहतेहैं], इस स्मृतिके प्रमाणसे ब्रह्मलोकादिकी प्राप्ति-रूप उत्तमगति होतीहै यह सिद्धभया॥ ११। २०॥

हे सौम्य! अब इस साध्य और साधनरूप सर्व संसारसे विरक्त पुरुषको ब्रह्मविद्याविषे अधिकारके देखावनेके अर्थ यह कहते हैं "परीक्ष्य लोकान् कर्मराचितान् ब्राह्मणो निर्वेदमायान्नास्त्यकृतः कृतेन" [ब्राह्मण कर्मसे रचित लोकोंको निश्चयकरके वैराग्य को करे अकृत नहीं है कृतसे क्याहै] "यथैकतासमता इति स्मृतेः" [ब्राह्मणका जैसा एकता समता और सत्यता (आदिरूप)

प्रधान व्यवहारवाला होने से ब्रह्मविद्याका मुख्य अधिकार ब्राह्मणकोही है [इस अभिप्राय से यहां श्रुतिविषे अधिकारीका विशेषणरूप ब्राह्मणपद है] ब्राह्मण जो है सो अविद्याआदिक दोषवाले पुरुषके प्रतिही विधान किया होनेसे स्वाभाविक अविद्या काम और कर्मरूप दोषवाले पुरुषकरके अनुष्ठान करने योग्य जो यह ऋग्वेदादिरूप अपर विद्याका विषयहै, तिसको। और जो तिस अनुष्ठानके कार्य हुये फलरूप लोक हैं, और जो विहित कर्मका अकरण, और प्रतिषेध कर्मका करना, और मर्य्यादाके उल्लंघनरूप दोषकरके साध्य जे नरक तिर्यक् प्रेतादि योनिरूप नरक हैं, तिन संसारकी गतिरूप अव्याकृतादि लेके स्थावर पर्यन्त व्याकृत और अव्याकृतस्वरूप, बीज और अंकुरवत् परस्परकी उत्पत्तिके निमित्त अनेक शत और सहस्र अनर्थों करके पूर्ण कदलीके स्तम्भवत् असारभूत, माया (छल) मरीचि जल गन्धर्वनगरके आकार, स्वप्न, जलगत बुद्बुद और फेनके तुल्य प्रतिक्षण नाश होनेवाले, पीछे से देखेहुये अविद्या और कामरूप दोषकरके प्रवृत्तभये धर्म अधर्मरूप कर्म से रचित लोकनको, प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, और शब्द (शास्त्र) रूप इनचार प्रमाणोंसे [इस लोकसम्बन्धी कर्मके फलरूप पुत्रादिकोंके नाशको विषयकरनेवाला प्रत्यक्ष प्रमाण है। और विवादका विषय स्वर्गादिक अनित्य है, कियाकरके साध्य होने से, घटवत्, यह अनुमान परलोकसम्बन्धी फलके नाशको विषय करनेवाला। "तदथेह कर्मचितो लोकः क्षीयत" । सो जैसे यहां कर्मकरके सम्पादित लोक क्षयको पावताहै । तैसे वहां "पुण्यचितो लोकः क्षीयत" । पुण्यसे सम्पादित किया लोक क्षयको पावताहै । इत्यादिरूप शब्द (आगम) प्रमाण है। तीन प्रमाणों करके अनित्य होनेसे सर्व प्रकारसे निश्चय करके यह अर्थहै]सर्व ओरसे यथार्थपने से निश्चयकरके, तिनसे वैराग्यको करे। सो वैराग्यका प्रकार देखावतेहैं, इस संसारविषे कोई भी अकृत (अ-

कर्मरचित होने से अनित्य हैं ताते कुछभी वस्तु नित्य नहीं यह अभिप्राय है। और सम्पूर्ण कर्म अनित्यकाही साधन है। और जिसकरके उत्पत्ति होनेयोग्य, वा प्राप्ति होने योग्य, वा संस्कार करने योग्य, वा विकार करनेयोग्य इनभेदसे चारप्रकारकाही समस्त कर्मका कार्य है। एतदर्थ इससे पर (अन्य) कर्मका विषय नहीं हैं। और मैं, नित्य, अमृत, अभय, कूटस्थ (परिणामरहित) अचल (स्फुरणरहित) ध्रुव (प्रयत्नरहित), वस्तुसे अर्थ (प्रयोजन) वालाहौं, तिससे विपरीत वस्तुसे प्रयोजनवाला, नहीं। एददर्थ बहुत श्रमकरके युक्त और अनर्थके साधनरूपकृत (कर्म) तिनसे क्या प्रयोजनहै इसप्रकार वैराग्यको प्राप्तहोवे। पश्चात् "। तद्विज्ञानार्थं सगुरुमेवाभिगच्छेत् समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम् "। सो समित्पाणिहुआ तिसके विशेषज्ञानार्थ श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ गुरु के ताईंही शरणको प्राप्तहोय। सो वैराग्यको प्राप्तभया ब्राह्मण, सभिधोंका भार ग्रहण किया है जिसने अर्थात् अगर्वता विनयता आदि दैवीसम्पत्तिमान् ऐसाहुआ, अभय शिव अकृत और नित्यरूप जो पदहै तिसकी विशेषकरके प्राप्तिके अर्थ शम दम और दया करके सम्पन्न श्रोत्रिय, अर्थात् वेद शास्त्र अध्ययनकिये और तिनके श्रवणकिये अर्थ करके सत्पन्न, और ब्रह्मनिष्ठ, सर्व कर्मोंको त्याग के केवल अद्वैतरूप ब्रह्मविषे जिसकी निष्ठा होय [यहां ब्रह्मनिष्ठ शब्दहै सो तपोनिष्ठ शब्दवत्‌है। और जिसकरके कर्म और आत्मज्ञान इन दोनोंका परस्पर विरोध है, तिसही करके कर्मिष्ठ पुरुष को ब्रह्मनिष्ठता सम्भवे नहीं। एतदर्थ ही यहां सर्व कर्मको त्याग के ब्रह्मविषे निष्ठा कही। और अमुक कर्मके करनेसे अमुक फलकी प्राप्ति होगी, और तिनके न करने से प्रत्यवायआदि अनर्थ की प्राप्तिहोगी, इस बुद्धिपूर्वक जो कर्मका अथवा किसी अन्य साधन का करना, तिसको कर्त्तव्य कहते हैं, तिस कर्त्तव्यकी बुद्धिका जो त्याग सोई यहां सर्वकर्मका त्याग है क्रियामात्रका त्याग नहीं] ऐसे सद्गुरुकी शरणको प्राप्तहोय। सो ब्राह्मण तिस गुरुके अर्थ

तस्मै स विद्वानुपसन्नाय सम्यक् प्रशान्तचित्ताय शमान्विताय। येनाक्षरं पुरुषं वेद सत्यं प्रोवाच तां तत्त्वतो ब्रह्मविद्याम् ॥ १३ । २२ ॥

इति प्रथममुण्डकगतद्वितीयखण्डः समाप्तः ॥

इति प्रथममुण्डकम् ॥

शास्त्रके अनुसार समीपगयाहुआ गुरुको सेवाआदिकों से प्रसन्न करके सत्य और अक्षर (अविनाशी) रूप पुरुषको पूंछे॥१२।२१॥

हे सौम्य ! "तस्मै स विद्वानुपसन्नाय सम्यक् प्रशान्तचित्ताय शमान्विताय"। तिस समीप आये शान्तचित्तवाले शम करके युक्तके अर्थ सो विद्वान्, तिस शास्त्रानुसार समीप आये शान्तचित्त वाले अर्थात् गर्वादिदोषरहित, और बाह्य ज्ञानेन्द्रियोंकी उपरति रूप शमकरके युक्त (सर्व से विरक्त) शिष्यके अर्थ सो विद्वान्, अर्थात् ब्रह्मनिष्ठ गुरु। "येनाक्षरं पुरुषं वेद सत्यं प्रोवाच तां तत्त्वतो ब्रह्मविद्याम्"। तिससे सत्य और अक्षर रूप पुरुषको जानताहै तिस ब्रह्मविद्याको यथार्थ कहै। जिस परविद्यारूप विज्ञानसे अदृश्यत्वादि विशेषणवाले सत्य और अक्षररूप, [अवयवोंके अन्यथा भावरूप परिणामस्वरूप क्षरणसे रहित होने से, और शरीर रहितरूप अक्षतपने से, और विकाररूप क्षयसे रहित होने से यह पुरुष (आत्मा) को अक्षर कहते हैं] पुरुषको जानताहै, तिस ब्रह्मविद्याको यथार्थ कहै ॥ आचार्यकाभी यह नियमहै जो, न्यायसे प्राप्तभये शिष्यको अविद्यारूप अपार महोदधिसे उद्धार करना ॥ १३ । २२ ॥

इति मुण्डकउपनिषद्गत प्रथममुण्डकके द्वितीय खण्डकी भाषाटीका समाप्त ॥

अथ द्वितीयमुण्डके प्रथमखण्डः प्रारभ्यते ॥

तदेतत्सत्यं यथा सुदीप्तात् पावकाद्विस्फुलिङ्गाः सहस्रशःप्रभवन्ते स्वरूपाः । तथाऽक्षराद्विविधाः सौम्य भावाः प्रजायन्ते तत्र चैवापियान्ति ॥ १ । २३ ॥

द्वितीयमुण्डकगतप्रथमखण्डकीभाषाटीका का प्रारम्भ ॥

हे सौम्य ! यहां पर्यन्त अपरविद्याका सर्वकार्य कहा, अर्थात् ['द्वेविद्येवेदितव्ये,' । दोविद्याजाननेको योग्य हैं । यह इस उपनिषद्के प्रथम मुण्डकके प्रथम खण्डके चतुर्थ मन्त्र से दोनों विद्याके कहनेका आरम्भकरके, प्रथम मुण्डक से अपर विद्याका वर्णनकरके पराविद्याका वर्णन करनेको द्वितीय मुण्डकका प्रारम्भ है, इस प्रकार यहां कहते हैं] अब सो अपरविद्याकाकार्य (विषय) रूप संसार जिस सारवाला है, और जिस अक्षरनामवाले मूल से उपजता है, और जिसविषे लीन होता है, सो पुरुषनामवाला अक्षर सत्य है । और जिसके जानने से यह सर्व जानाजाता है, सो परारूप ब्रह्मविद्याका विषयहै सो कहने योग्यहै। ताते यह उत्तरग्रंथ का आरम्भ करते हैं । [जैसा पूर्वकर्मका भी सत्यपना कहा है, तैसाही यह पर विद्याके विषयका सत्यपना माननेको योग्य नहीं ऐसा कहते हैं] जो अपराविद्याका विषय कर्मका फल सत्य है सो आपेक्षिकहै।और यह पराविद्याका विषय तो परमार्थ से सत्यरूपहोनेकरके " तदेतत्सत्यम् " । सो यहसत्य है । सो यह विद्याका विषय सत्य यथार्थहै । और अन्यअविद्याका विषय होने से मिथ्या है । [यहां यह हार्दव है ब्रह्मको, पुण्यपापरूप अपूर्ववत् अत्यन्त परोक्षताहै, तिसकरके अर्थात् एक शब्द (शास्त्र) रूप प्रमाणकर के जानने को योग्य है ताते उसका प्रत्यक्षज्ञान सम्भवता नहीं, और मोक्ष जोहै सो साक्षात्कारके आधीन है, विना ब्रह्मके साक्षात्

कैसे प्रत्यक्ष प्रमाणवत् प्राप्तहोवेंगे। इस अभिप्रायसे जीवब्रह्मकी एकता विषे दृष्टान्त कहते हैं। यहां यह अर्थहै कि ब्रह्म आत्माकी एकता होनेसे, जब प्रत्यक्रूप आत्मा अपना आप अपरोक्षहै तब ब्रह्मका भी जैसे एकदेशी घटके प्रत्यक्ष ज्ञानहोने से सर्वदेशके सर्व घटोंका ज्ञान प्रत्यक्ष होता है तद्वत्, प्रत्यक्षपना होगा यहां उक्त दृष्टान्त और सिद्धान्तका यह वर्णन है कि जैसे अग्नि के सूक्ष्म अवयवरूप विस्फुलिङ्गों (चिनगारियों) विषे भिन्न भिन्न देशके अवच्छेदसे, अर्थात् पृथक् २ देशोंकरके युक्त होने से आकार अवयवादि पनेका व्यवहार है, अर्थात् अग्निकी चिनगारियें विषे पृथक् २ आकारादि विकार व्यवहार है परन्तु स्वरूप करके फेर भी सर्व चिनगारियों बिषे एक समान अग्निरूपताही है, क्योंकि उष्णता और प्रकाशताका अविशेषपनाहै ताते, अर्थात् सर्व चिनगारियोंबिषे उष्णता और प्रकाशतालक्षणवाला निर्विशेष अग्नि एक हीहै तैसेही चैतन्यरूपताके अविशेषसे जीवोंको स्वरूपसे ब्रह्मरूपताही है अर्थात् जैसे सोपाधि अग्निके नानाप्रकार विस्फुलिङ्गहोते हैं परन्तु तिनसर्वविषे निरुपाधि समान उष्णता और प्रकाशतारूप लक्षणवाला अग्नि एकही है, तैसेही मायोपाधियुक्त चैतन्यरूप अग्निसे नानालिङ्ग (जीव) रूप विस्फुलिङ्ग पृथक् २ निकलते हैं परन्तु तिन सर्वविषे चैतन्यतादि लक्षणवाला निरुपाधि ब्रह्मएकही होने से सर्व जीवों को स्वरूपसे ब्रह्मरूपताही है] अक्षरवस्तु को अत्यन्त अपरोक्ष होनेसे प्रत्यक्ष (घट) वत् कैसे प्राप्तहोवेंगे, इस शङ्काको मनविषे ल्यायके दृष्टान्त कहते हैं " यथा सुदीप्तात् पावकाद्विस्फुलिङ्गाः सहस्रशः प्रभवन्ते स्वरूपाः " । जैसे भली प्रकारकरके प्रज्वलित भये अग्निसे अनेक अग्नि के समान रूप वाले विस्फुलिङ्ग निकलते हैं । जैसे भलीप्रकारसे प्रज्वलितभये अग्नि से सहस्रावधि अग्निके समानरूपवाले अग्निके अवयव रूप विस्फुलिङ्ग (चिनगारे) निकलते हैं । " तथाऽक्षराद्विविधाः सौम्य भावाः प्रजायन्ते तत्र चैवापियान्ति " । हे सौम्य ! तैसेही

दिव्योह्यमूर्त्तः पुरुषः सबाह्याभ्यन्तरो ह्यजः । अप्राणो ह्यमनाः शुभ्रो ह्यक्षरात् परतः परः ॥ २ । २४ ॥

अक्षर से विविध भाव उपजते हैं, पुनः तहांही लीन होते हैं । हे सौम्य ! हे प्रियदर्शन ! तिसही प्रकार उक्त लक्षणवाले अक्षर से आकाशादिकोंवत् नाना देहरूप उपाधि के भेदके अनुसारही होने से विविध (नाना) प्रकारके भाव (जीव) उपजते हैं जैसे घटादि उपाधिकरके परिच्छिन्न नानाप्रकारके आकाशरूप छिद्रके भेद, घटादिकों के भेदके अनुसारही होते हैं, इसही प्रकार जीव भी नाना नामरूप रचित देहरूप उपाधिके भेदके अनुसारही होते हैं । और पुनः भी घटादिकों के विलय भये पश्चात् आकाशरूप छिद्रनके विलयहोनेवत् तिसही अक्षरविषे देह (लिंग) रूप उपाधिके विलयभये पश्चात् लीन होते हैं । और जैसे आकाश को छिद्रों के भेद के उत्पत्ति और प्रलय का निमित्तपना जो है सो घटादि उपाधियोंका कियाहै, तैसेही अक्षरको भी जीवोंकी उत्पत्ति और प्रलयका निमित्तपना जो है सो नामरूप कृत देहउपाधि रूप निमित्तका कियाही है ॥ १ । २३ ॥

हे सौम्य ! अब [अक्षर पुरुषको जो उपाधिका किया जीवों की उत्पत्ति और प्रलयका निमित्तपना कहा, सो कार्य कारण भावकरके तिनकी अभेदताकी सिद्ध्यर्थ है । और परमार्थ से स्तुतिरूप निमित्तवाला जीवोंकी उत्पत्ति और प्रलय का निमित्त भावभी नहीं है, ऐसा कहते हैं [नामरूपके बीजभूत अव्याकृत नामवाले और अपने कार्यकी अपेक्षा करके पर (श्रेष्ठ) अक्षर से पर जो सर्व उपाधियों के भेदसे रहित, और आकाशवत् सर्व मूर्त्ति (आकार) से रहित, और ' नेतिनेति ' । कार्यरूपभी नहीं और कारणरूपभी नहीं । इत्यादि विशेषणवाला जो अक्षरकाही स्वरूप है तिसको कहनेकी इच्छाकरतेहुये कहते हैं । "दिव्योह्यमूर्त्तः पुरुषः

अजही वर्त्तताहै। जो स्वयंज्योति रूप होने से दिव्य (प्रकाशमान) है, अथवा अपने आत्मरूप स्वर्ग बिषे स्थित है, एतदर्थ दिव्यहै, अथवा अलौकिकहै ताते दिव्यहै। और जिसकरके सर्व मूर्त्ति से रहितहै इसही से अमूर्त्त है। और पूर्ण है, अथवा शरीररूपी पुरियों बिषे रहताहै ताते पुरुष है। ऐसादिव्य और अमूर्त्त (आकाररहित) जो पुरुष है सो बाहर [देहकी अपेक्षासे जो बाहर और भीतररूप देशप्रसिद्धहै तिसकेसाथ ही तादात्म्यसे, अथवा तिसके अधिष्ठान-पने से वर्त्तता है, एतदर्थ 'सबाह्याभ्यन्तरः' बाहर भीतर सहितहै। एतदर्थ सर्वरूप होनेसे तिससे पृथक् जन्मके निमित्तका अभावहै ताते अज (जन्मरहित) है] और भीतरके देशकरके सहित वर्त्तता है। और अजन्मा है, अर्थात् किसी से भी जन्मको पावता नहीं, क्योंकि स्वरूप से जो अजन्माहै तिसके जन्मके निमित्तका अभाव है ताते। और जैसे स्वरूपसे जन्मवाले जलगत बुद्बुद आदिकों के जन्मके निमित्त वायुआदिकहैं। और जैसे स्वरूपसे जन्मवाले आकाशके छिद्रोंके भेदक जन्मके निमित्त घटादिकहैं, तिसप्रकार स्वरूपसे जन्मरहित परमात्माके जन्मका निमित्त नहीं है। और एतदर्थ सर्व [जायते (जन्म), अस्ति (प्रकटता), विपरिणमते (विपरिणाम), अपक्षीयते (अपक्षय), विनश्यति (विनाश), इनयास्कनामवाले मुनिने निरुक्तनामक ग्रन्थ बिषे कथन किये षट्-अनिर्वचनीय भावरूप विकारोंके निषेध बिषे अजशब्दके तात्पर्यको कहतेहैं] भावरूप विकारोंको जन्मरूप मूलवाले होने से तिसजन्म के निषेधसे सर्वविकार निषेधको प्राप्तहोते हैं। और जिसकरके यह पुरुष बाहर भीतर रहित है और अजन्माहै, इसहीसे अजरहै, अमृतहै, अक्षयहै, ध्रुव है, और अभयहै, यह अर्थ है। [जीवोंको प्राण आदिककरके युक्तहोने से तिनकी स्वरूपताकेहुये ब्रह्मकोभी प्राण आदिककरके युक्तपना प्राप्तभया तिसको निवारण करतेहैं] यद्यपि देहादिक उपाधियोंके भेदकी दृष्टिवाले पुरुषोंकी तलमल आदिक

प्राणसहित मन सहित इन्द्रिय सहित और विषय सहित प्रतीत होता है, तथापि स्वरूप से परमार्थ करके देखाहुआ क्रियाशक्ति के भेदवाला चलनरूप प्रसिद्ध विद्यमान प्राणवायु जिसविषे विद्यमान नहीं है याते " अप्राणोह्यमनाः शुभ्रो ह्यक्षरात्परतःपरः" अप्राणहै अमनाहै शुभ्रहै अक्षर सेपरसो पुरुषहै। पुरुष अप्राणहै। और तैसेही अनेकज्ञान शक्तिके भेदवाला सङ्कल्पादिकरूपमनभी जिस विषे अविद्यमानहै, एतदर्थ यह पुरुष अमनाहै यहां अप्राण और अमना, इस कथनसे प्राणादिक वायु के भेद कर्मेन्द्रियां और तिनके विषय, तैसे मनबुद्धि ज्ञानेन्द्रियां और तिनके विषय, निषेध कियेजानने। और जैसे "ध्यायतीव लेलायतीव" ध्यान करतेहुयेवत् और लीला (क्रीड़ा) करतेहुयेवत्है। इसअन्य श्रुतिविषेदोनों उपाधियों के निषेधसे सर्व उपाधियोंका निषेध जनायाहै, तैसेही यहांभी जानलेना और जिसकरके उक्तप्रकार उपाधियों से रहित अद्वैतरूपहै, तिसही करके शुभ्र (शुद्ध) रूपहै। और जिसकरके शुभ्र है, इसहीसे नामरूपके बीज (ब्रह्म) का उपाधि होनेकरके लक्षित है स्वरूप जिसका, ऐसे माया उपाधिरूप और तिस उपाधिकरके विशिष्ट ब्रह्मरूप सर्वकार्योंसे पर। [ननु, मायातत्त्वरूप अक्षर को परपना कैसेहै इस संशय केहोनेसे कहते हैं, जिसकरके मायातत्त्व समस्त कार्य कारणका बीज होनेकरके लखिये हैं, तिसकर के पर है। और कार्य जो है सो अपर (अश्रेष्ठ) रूप प्रसिद्ध हैं। और जो तिसकार्यका कारण होनेकरके जानने विषे आवता हैं एतदर्थ मायातत्त्व पर (श्रेष्ठ) है। और यौक्तिकबाधसे अनिर्वचनीय हुये भी तिसके स्वरूपके उच्छेद (नाश) के अभाव मायातत्त्व अक्षर है। सो गीताशास्त्र के पन्द्रहवें अध्यायविषे कहा है "क्षरःसर्वाणि भूतानिकूटस्थोऽक्षरउच्यते। उत्तमःपुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः" सर्व (कार्यकारणरूप) भूतक्षर हैं। और कूटस्थ (कपटवत्) मिथ्या स्थित होनेवाला मायातत्त्व अक्षर है। और उत्तमपुरुष तो इनसे अन्यही है जो परमात्मा नामसे कहा जाता है।] (श्रेष्ठ)

एतस्माज्जायते प्राणो मनःसर्व्वेन्द्रियाणि च । खंवायु-ज्योतिरापःपृथिवी विश्वस्य धारिणी ॥ ३ । २५ ॥

अक्षर से पर (निरुपाधि) सो पुरुष है । यह अर्थ है ॥ प्र० ॥ ननुजिस विषे सो आकाशनामक अक्षर सम्यक् व्यवहार का विषय हुआ ओत और प्रोतहै, तिसअक्षर पुरुषको पुनः प्राणादिकों से रहितपना कैसे है ॥ उ० ॥ जब प्राणादिक अपनी उत्पत्ति से पूर्व पुरुषवत् अपने स्वरूपकरके विद्यमानहोय तव पुरुषको विद्यमान प्राणादिकों से प्राणादिवान्पना होय । परन्तु वे प्राणादिकअपनी उत्पत्तिसे पूर्व विद्यमानहैं नहीं, एतदर्थ पुरुष (अक्षर) प्राणादिकों से रहित है ॥ २ । २४ ॥

हे सौम्य ! जैसे पुत्रके अनुत्पन्नभये देवदत्त पुत्र से रहित है ऐसा कहते हैं । तैसे परमात्मा नामवाले पुरुष को वे प्राणादिक कैसे विद्यमान नहीं हैं । यह शंका विचार के कहते हैं । [जोई चैतन्य निरुपाधि शुद्ध अविकल्परूप ब्रह्म, तत्त्वज्ञान से जीवों का कैवल्य मोक्षरूपहै, सोई ब्रह्म मायाविषे प्रतिबिम्बरूपसे स्थित हुआ कारण होता है ऐसा कहते हैं] " एतस्माज्जायते प्राणो मनःसर्व्वेन्द्रियाणि च " । इससेही प्राण उपजे हैं, और मन और सर्व इंद्रियां (उपजे हैं) । जिसकरके नाम रूपके बीज (ब्रह्म) के उपाधि करकेलक्षित इस पुरुष सेही अविद्या के आधीन [जब प्राणकी उत्पत्ति से पूर्व आत्माको प्राणसहितपना नहीं है, तब प्राणकी उत्पत्तिसे पश्चात् आत्माको प्राणसहितपना होगा । इस शंकाकी निवृत्ति के अर्थ प्रसिद्ध प्राणके विशेषणको कहते हैं] कार्यरूप नाममात्र मिथ्यास्वरूप प्राण उपजता है " वाचारम्भणं विकारोनामधेयमिति " । वाणीसे उच्चारण किया विकार (कार्य) नाममात्रहै । इस छान्दोग्यकी श्रुतिसे । तिस हेतुसे, जैसे पुत्ररहित देवदत्त को स्वप्नविषे देखहुये पुत्रकरके पुत्रसाहितपना नहीं है, तैसेही अविद्याके विषय (आधीन) और गुणयुक्त प्राणसे परपुरुष

अग्निर्मूर्द्धा चक्षुषी चन्द्रसूर्य्यौ दिशः श्रोत्रे वाग्विवृत्ताश्च वेदाः । वायुः प्राणो हृदयं विश्वमस्य पद्भ्यां पृथिवी ह्येष सर्व्वभूतान्तरात्मा ॥ ४ । २६ ॥

का प्राण सहितपना नहीं है। तैसेही मन और सर्व इन्द्रियां और तिनके विषय इसही पुरुषसे उपजते हैं। एतदर्थ इस पुरुषको आरोपसे रहित (यथार्थ) प्राणादिकसे रहितपना सिद्धभया। और जैसे वे प्राणादिक अपनी उत्पत्ति से पूर्व परमार्थ से अविद्यमानहैं, तैसेही उत्पत्तिसे पीछे तिसहीविषे लीनहोते हैं, इसप्रकार जानना। और जैसे इस पुरुष से मन और इन्द्रियरूप करण उपजते हैं, तैसेही शरीर और विषयों के कारण "खंवायुर्ज्योतिरापः पृथिवी विश्वस्यधारिणी" । आकाश वायु अग्नि जल और विश्वके धारण करनेवालीपृथिवी (उपजेहैं) । आकाश और आवह आदिक सातभेद वाला वाह्यका वायु और अग्नि और जल और विश्वको धारण करने वाली पृथिवी, यह शब्द स्पर्श रूपरस और गन्धरूप पिछले २ गुण वाले और पूर्व पूर्वके गुणरहित पंचभूत इसही पुरुषसे उपजते हैं ॥ "दिव्योह्यमूर्त्तः पुरुषः" । दिव्य अमूर्त्त पुरुष है । इत्यादि मन्त्र से निर्विशेष सत्य अक्षर पुरुषरूप पराविद्याके विषयको संक्षेप से कहके पुनः सोई पूर्वोक्त सविशेष वस्तु अब सविस्तर कहने को योग्यहै। और जिसकरके सूत्रभाष्य की युक्तिवत् एकही प्रसङ्ग विषे संक्षेप और विस्तारसे कहाहुआ पदार्थ सुख से जानने में आवता है, एतदर्थ पूर्व संक्षेप से कथन किये निरुपाधिक वस्तुको अब सोपाधिकपने करके सविस्तर कहते हैं ॥ ३ । २५ ॥

हे सौम्य ! जो प्रथम उत्पन्नभये हिरण्यगर्भ रूप प्राणसे उपजा है। और अन्यतत्त्व सहित आकाशके स्वरूपसे लक्षविषे आवता है ऐसा जो इस हिरण्यगर्भ के भीतर वर्त्तमान विराड् है सो भी इसी पुरुष से उपजा है और इसी का स्वरूप है, इसी अर्थको कहते हैं। और उस विराड्पुरुषको विशेषण देते हैं "। अग्निर्मूर्द्धा

चक्षुषी चन्द्रसूर्य्यौ दिशः श्रोत्रे वाग्विवृताश्चवेदाः ” । अग्नि मस्तक चन्द्रसूर्य दोनों चक्षु दिशा श्रोत्र प्रसिद्ध वेद हैं वाणी (जिसकी)। हे गोतम ! “ असौवाव लोको गौतमाग्निरिति श्रुतेः ” यह प्रसिद्ध स्वर्गलोक अग्नि है, इस श्रुतिकरके, अग्नि जो स्वर्गलोक सो है मस्तक जिसका । और चन्द्र सूर्य हैं दोनों चक्षु जिसके और दशो दिशा हैं श्रोत्र जिसके और प्रसिद्ध चारोंवेद हैं वाणी जिसकी । और “वायुः प्राणो हृदयं विश्वमस्य पद्भ्यां पृथिवी ह्येष सर्वभूतान्तरात्मा ” । वायु है प्राण (और) समस्त विश्वहै हृदय जिसका (और) पादोंसे पृथिवी है यह सर्व भूतोंका अन्तरात्माहै । वायु है प्राण जिसका । और समस्त जगत् है हृदय (अन्तःकरण) जिसका । एतदर्थ अन्तःकरणका विकाररूपही सर्वजगत् मनविषे ही स्थितहै, क्योंकि सुषुप्ति बिषे जगत्का प्रलय देखते हैं । और जाग्रत् बिषे भी किसी मनसेही, अग्निसे चिनगारवत्, उत्पन्न होता है, एतदर्थ यहां सर्व विश्वाविराड्का अन्तःकरण कहा है। और जिससे दोनों चरणोंसे पृथिवी भई है । यह प्रथम शरीरधारी त्रैलोक्यमय देहरूप उपाधिवाला अनन्तरूप विष्णुदेव आकाशादि सर्व भूतोंका अन्तरात्मा अर्थात् स्थूल पंचभूतरूप शरीरवाला विराट् है । सोई सर्वभूतों बिषे द्रष्टा श्रोता मन्ता विज्ञाता और सर्व करणोंका स्वरूप है । और पांच, अर्थात् [स्वर्गलोक, मेघ, पृथिवी, पुरुष और स्त्री, इन पांचोंविषे अग्निकी दृष्टिको, अन्य छान्दोग्य उपनिषद्के पंचमाध्याय सम्बन्धी पंचाग्निविद्याबिषे उक्त होनेसे उन स्वर्गादिक] पांच अग्निरूप द्वारसे जो प्रजा व्यवहार करे हैं सो प्रजाभी उसी पुरुषसे उपजे हैं, इसप्रकार अब आगिले मन्त्र करके कहते हैं ॥ ४ । २६ ॥

हे सौम्य ! “ तस्मादग्निः समिधोयस्यसूर्य्यः ” । जिससे अग्नि होता है कि जिसका समिध सूर्य है । तिस पुरुष से प्रजाकी स्थिति विशेषरूप जो स्वर्गलोकरूप अग्नि है सो उत्पन्न होताहै, कि जिस अग्निका सूर्य समिधावत् समिध है । और जिस करके

तस्मादग्निः समिधो यस्य सूर्य्यः सोमात्पर्ज्जन्य ओषधयः पृथिव्याम् । पुमान्रेतः सिञ्चति योषितायां वह्वीः प्रजाः पुरुषात्सम्प्रसूताः ॥ ५ । २७ ॥

सूर्य्य से स्वर्गलोक प्रकाशित होता है तिसकरके सूर्य्य उसका समिधहै, स्वयंप्रकाशी गोलही स्वर्गलोक है । और " सोमात् पर्जन्यओषधयः पृथिव्याम् " । चन्द्रमा से मेघ और पृथिवी विषे ओषधियां (होती हैं) । तिस स्वर्गलोकरूप अग्नि से " सोमोराजा सम्भवति " उत्पन्न भया जो चन्द्रमा तिस चन्द्रमा से मेघरूप द्वितीय अग्नि उत्पन्न होताहै । और तिस मेघ से भई वर्षा तिस करकेपृथिवी विषे ओषधियां (व्रीहि यवादि अन्न) उत्पन्न होताहै । और " पुमान् रेतः सिञ्चति योषितायां " । पुरुष है सो स्त्री विषे रेतको सिंचन करताहै । पुरुष रूप अग्नि विषे हवन की हुई अन्नादि ओषधियों से उत्पन्न भया जो रेत (वीर्य) तिसको पुरुष स्त्रीरूपा अग्निविषे सिंचन करता है । इस प्रकार क्रम करके " वह्वीः प्रजाः पुरुषात् सम्प्रसूताः " । पुरुष से बहुतसी प्रजा उत्पन्न होती हैं । परब्रह्मरूप पुरुष से ब्राह्मणादि बहुतसी प्रजा उत्पन्न होती हैं ॥ और कर्म के साधन और फल उसी पुरुष से उत्पन्न होते हैं, इस प्रकार अब आगिले मंत्रकरके कहैंगे ॥५।२७॥

हे सौम्य ! ॥ प्र० ॥ हे भगवन् ! तिस पुरुष से कर्म के साधन और फल कैसे होते हैं ॥ उ० ॥ " तस्मादृचःसामयजूंषि " । तिससे ऋचा (ऋग्वेद) सामवेद यजुर्वेद (होते हैं) । तिस पुरुष से नियमित अक्षरवाले पदहैं अन्तविषे जिसके, ऐसे गायत्री आदिक छन्द करके युक्त मंत्ररूप ऋचा, और पांच अवयववाला और सप्त अवयववाला [हिङ्कार, प्रस्ताव, उद्गीथ, प्रतिहार, और निधन, इन नामक पांच अवयववाला और हिङ्कार, प्रस्ताव, आद्य, उद्गीथ, प्रतिहार, उपद्रव और निधन, इननामक सात अवयवोंवाला, जो सामहै सो पांच विभक्तिक और सात विभक्तिकहै] और अर्थरहित

तस्मादृचःसामयजूंषि दीक्षा यज्ञाश्च सर्व्वे क्रतवो दक्षिणाश्च । संवत्सरश्च यजमानश्च लोकाः सोमो यत्र पवते यत्र सूर्य्यः ॥ ६ । २८ ॥

अक्षररूप स्तोमआदिकके गान करके युक्त भेदसें तीनप्रकारका साम और नियमरहित अक्षरवाले पदहैं अन्तविषे जिसके, ऐसे वाक्यरूप यजुर्वेदके मन्त्र ऐसे तीन प्रकार के मन्त्ररूप वेद होते भये। और "। दीक्षा यज्ञाश्च सर्वे क्रतवो दक्षिणाश्च"। दीक्षा और यज्ञके स्तम्भसहित सर्व क्रतुरूप यज्ञ और दक्षिणा (होतेभये)। यज्ञोपवीतादि लक्षणवाले कर्त्ता के सत्यभाषणादि नियम विशेष रूपदीक्षा और यज्ञके यूप (स्तंभ) आदिक सहित अग्निहोत्रादिक क्रतुरूप यज्ञ, और एक गौसे आदिलेके [विश्वजित् और सर्वमेध, इनदोनों यज्ञोंविषे सर्वस्व (सर्वधन) की दक्षिणा होती है, एतदर्थ एक गौसे लेके सर्वस्वधन पर्यन्त दक्षिणा दीजातीहै] अपरिमित सर्व धनके दानपर्यन्त दक्षिणा और "। संवत्सरश्च यजमानश्च लोकाः सोमो यत्र पवतेयत्र सूर्य्यः"। संवत्सर और यजमान और लोक (उपजते हैं) और जिनविषे चन्द्रमा पोषण करताहै और जिनविषे सूर्य्य पवताहै। कालरूप संवत्सर, और कर्त्तारूप यजमान, यह कर्मों के साधन (सामग्री) और तिनकर्त्ता के कर्म के फलरूप लोक, उपजते हैं। और जिन लोकोंविषे चन्द्रमा लोकोंको (प्रजाको) पोषणकरताहै, और जिन लोकोंविषे सूर्य्य तपताहै, सो लोक दक्षिणायन और उत्तरायणरूप उभय मार्गोंसे गमन करनेयोग्य विद्वान् और अविद्वानूरूप कर्त्ता के कर्मफलहैं ॥ ६ । २८ ॥

हे सौम्य ! "। तस्माच्च देवा बहुधा सम्प्रसूताः"। तिससे बहुतप्रकारके देवता सम्यक् उत्पन्न होतेभये। तिस परमात्माख्य पुरुष से कर्मके अंगभूत वसुआदिक गणों के भेदसे बहुत प्रकार के देवता सम्यक् प्रकारसे उत्पन्न होतेभये। और "। साध्या मनुष्याः पशवो वयांसि"। साध्य और मनुष्य और पशु और पक्षी उत्पन्न (होते भये)।

तस्माच्च देवा बहुधा सम्प्रसूताः साध्या मनुष्याः पशवो वयांसि । प्राणापानौ व्रीहियवौ तपश्च श्रद्धा सत्यं ब्रह्मचर्यं विधिश्च ॥ ७ । २६ ॥

साध्य नामवाले देवविशेष, और कर्मके अधिकारी मनुष्य, और ग्राम तथा वनके निवासी 'अरण्या ग्राम्याश्च ये' पशु और पक्षी उत्पन्न होतेभये । और 'प्राणापानौ व्रीहियवौ तपश्च श्रद्धा सत्यं ब्रह्मचर्यं विधिश्च' प्राण और अपान, धान्य और यव और तप और श्रद्धा और सत्य और ब्रह्मचर्य और विधि (उत्पन्न होतेभये) मनुष्यादिकोंका जीवन प्राण और अपान, और हवनरूप अर्थवाले धान्य और यव, और कर्मका अङ्ग ['पयोब्राह्मणस्य व्रतं यवागूराजन्यस्यामिक्षा वैश्यस्येत्यादि श्रुतिः' ब्राह्मणका पयोव्रत, और क्षत्रियका यवागू (कांजी) व्रत है, और वैश्यका आमिक्षा (मिश्रित दूध और दधिका विकार) व्रतहै, इत्यादि श्रुतिबिषे विधानकिया जो कृच्छ्र और चांद्रायण आदिक व्रत, सो कर्मका अङ्गभूत आदिक तप है] पुरुषके संस्काररूप और स्वतन्त्र कर्मका साधनरूप तप, और जिसके पूर्व होने से सर्व पुरुषार्थों के साधनको कारणरूपचित्त की प्रसन्नता होती है, ऐसी आस्तिकपने की बुद्धिरूप श्रद्धा, और खेदका न करनेवाला भूठसे रहित यथार्थ अर्थका कथनरूप सत्य, और मैथुन (स्त्रीसंग) के अकरण (त्याग) रूप ब्रह्मचर्य, और कर्त्तव्यतारूपा विधि यह सर्व उक्त अक्षरसे उत्पन्न होतेभये ॥ ७।२६ ॥

हे सौम्य ! 'सप्तप्राणाः प्रभवन्ति तस्मात्सप्तार्चिषः सप्त समिधः सप्तहोमाः' तिससे सात प्राण और सातज्वाला और सात समिध और सातहोम होतेभये किंवा तिसही पुरुषसे मस्तकबिषे स्थित जो, दोश्रोत्र, दोनेत्र, दोघ्राण और एक मुखान्तर रसना, यह सात प्राणसंज्ञक इन्द्रियां होती हैं, अर्थात् 'चक्षुःश्रोत्रे मुखनासिकाभ्यां प्राणः स्वयं प्रातिष्ठते' इस प्रश्न उपनिषद्के तृतीय प्रश्नकी पांचवीं श्रुतिके प्रमाणसे उक्त सातों स्थानों बिषे स्वयं

सप्तप्राणाः प्रभवन्ति तस्मात्सप्तार्चिषः सप्त समिधः सप्तहोमाः। सप्त इमे लोका येषु चरन्ति प्राणा गुहाशया निहिताः सप्त सप्त॥ ८। ३०॥

प्राण प्रतिष्ठित (वर्त्तता) है ताते उक्त इन्द्रियोंकी प्राण संज्ञा है। और उन प्राणोंकी अपने २ विषयको प्रकाशनेवाली ज्ञानयुक्त वृत्तिरूपी अर्चियां (ज्वाला) होती हैं, और तैसेही उन अर्चियोंके अर्थ सात विषयरूप समिध होती हैं, अर्थात् जिसकरके विषयों से मिलके यह इन्द्रियां रूप प्राण, जैसे समिध से मिलके अग्निकी ज्वाला तैसे, बाह्य प्रवृत्त होती है। ताते विषय इन्होंके समिध हैं। और "यदस्य विज्ञानं तज्जुहोतीति श्रुत्यन्तरात्," जो इसका विज्ञान है तिसको होम करता है। इस अन्य श्रुतिके प्रमाण से, उन विषयोंके विज्ञानरूप सातहोम होते हैं "इन्द्रियाग्निषु जुह्वती," और, "सप्त इमेलोका येषुचरन्ति प्राणा गुहाशया निहिताःसप्तसप्त"। जिनविषे प्राण विचरते हैं यह सातलोक (होते हैं) और गुहाविषे रहतेहैं, और सात सात (स्थानकहतेहैं)। जिन्होंविषे प्राण विचरते हैं ऐसे इन्द्रियोंके स्थानरूप यह सातलोक होते हैं। और सो प्राण कैसे हैं कि, जो निद्राकाल में शरीररूप अथवा हृदयरूप गुहाविषे रहतेहैं, और जो परमेश्वरने प्राणियोंके भेदके प्रति सात सात स्थान किये हैं। हे सौम्य! इस सम्पूर्ण प्रकरणका यह अर्थ है कि, आत्मयाजी, अर्थात् ["सकलमिदमहंच वासुदेवः" यह सर्व जगत् और मैं परमात्माही है। इस प्रकारकी दृढ़ भावना पूर्वक परमेश्वर की आराधनकी बुद्धिसे जो यजन करते हैं तिनको आत्मयाजी कहते हैं] विद्वान् पुरुषों के जो कर्म और तिन कर्मोंके साधन और कर्मों के फल हैं, और अविद्वान् पुरुषोंके कर्म और तिन कर्मोंके साधन और कर्मों के फल हैं, यह सर्व जगत् सर्वज्ञ पर पुरुष (अक्षर ब्रह्म) से ही उत्पन्न भया है॥ ८। ३०॥

हे सौम्य! "अतः समुद्रा गिरयश्च सर्वेऽस्मात् स्यन्दन्ते

अतः समुद्रा गिरयश्च सर्व्वेऽस्मात्स्यन्दन्ते सिन्धवः सर्व्वरूपाः। अतश्च सर्व्वा ओषधयो रसश्च येनैष भूतैस्तिष्ठते ह्यन्तरात्मा॥ ९। ३१॥

सिन्धवः सर्वरूपाः" इसते सातों समुद्र और सर्व पर्वत और सर्व-रूपवाली नदियां होती हैं। इस अक्षर नामवाले पुरुष से क्षारादिक सप्त समुद्र होते हैं और हिमालय विन्ध्याचल आदि सर्व पर्वत, इस उक्त पुरुषसेही होते हैं, और बहुत रूपवाली जे गङ्गा यमुना सिन्धु आदिक नदियां सो भी इसही पुरुषसे स्रवती हैं, और "अतश्च सर्व्वाओषधयो रसश्च येनैष भूतैस्तिष्ठते ह्यन्तरात्मा" इसही से सर्व (अन्नादि) ओषधियां और रस होते हैं कि जिस करके भूतों करके अन्तरात्मा स्थित होता है। इसही पुरुष से तण्डुल यवादि सर्व ओषधियां उपजती हैं। और इसही पुरुष से मधुरादि अर्थात् मधु मीठा और कटु (कडुवा) और अम्ल (खट्टा) और तीक्ष्ण (तीखा) और क्षार (खारा) और कसाचल (कसायला) यह छः प्रकारका रस होता है। और जिस रस करके स्थूल पंचभूतों करके आवृतभया अन्तरात्मा (लिंगशरीर) स्थित होता है। अर्थात् लिंगरूप जो सूक्ष्म शरीर है सो जिसकरके स्थूल शरीर और आत्माके मध्यविषे बढ़ता (पुष्ट होता) है तिस करके इस लिङ्गको अन्तरात्मा कहते हैं॥ ९। ३१॥

हे सौम्य! इसप्रकार पुरुष (अक्षर) से यह सर्व उत्पन्न भया है। एतदर्थ 'वाचारम्भणं विकारो नामधेयं' वाणीसे उच्चार किया विकार नाममात्र (मिथ्या) होता है। और पुरुष (अक्षरब्रह्म) ही सत्य है। एतदर्थ "पुरुषएवेदं विश्वं कर्म तपोब्रह्मपरामृतम्" पुरुषही यह सर्व है (सर्वक्याहै) कर्म और तप ब्रह्म पर अमृतरूप पुरुष (अक्षर) ही यह सर्वहै। पुरुष से अन्य विश्वनामक कुछ भी वस्तु नहीं है। एतदर्थ "कास्मिन्नु विज्ञाते सर्वमिदं विज्ञातं भवतीति" हे भगवन्! किसके जानेहुये सर्व यह जाना जाता है।

पुरुष एवेदं विश्वं कर्म तपोब्रह्मपरामृतम् । एतद्योवेद निहितंगुहायांसोऽविद्याग्रन्थिंविकिरतीहसौम्य॥१०।३२॥

इति द्वितीयमुण्डके प्रथमखण्डः ॥

यह इसही उपनिषद् के प्रथम मुण्डकके प्रथमखण्डके तीसरे मंत्र विषे जो कहाथा, सो यह कथन किया। अर्थात् [जो प्रथम मुण्डक के तृतीय मंत्र करके जो शिष्यने प्रश्नकिया था कि हे भगवन् ! किसके जानने से यह सर्व जानाजाता है तिसका उत्तर निरूपण किया। यह नामरूपात्मक सर्व परमात्मा सेही उपजता है । एतदर्थ परमात्मस्वरूप यह सर्व, तिस परमात्मा के ही जानने से जाना जाताहे । इस प्रकार (आचार्यने शिष्यकी) अविद्याके क्षयरूप फलके कथनसे समाप्त किया]। ननु, सर्वके कारणभूत परमात्मा के जानने से 'पुरुष एवेदं विश्वं' । पुरुषही यह सर्व विश्वहे। इसप्रकार जानाजाता है ॥ प्र०॥ पुनः यह विश्व क्या है ॥ उ० ॥ अग्निहोत्रादिरूप कर्म, और तिस कर्मका किया ज्ञानमय तप और अन्यभी जो यह सर्व है, सो जिस करके ब्रह्मका कार्य है तिसही करके "एतद्यो वेद निहितं गुहायां सोऽविद्याग्रन्थिं विकिरतीहसौम्य"। हेसौम्य ! गुहाविषे स्थित परम अमृतरूप, इस ब्रह्म को जो जानताहे सो अविद्याग्रन्थिको नाश करे है । हे सौम्य ! (हेप्रियदर्शन !) सर्व प्राणियोंकी हृदयरूपी गुहाविषे स्थित परम अमृतमय इसब्रह्मको 'अहमेवेति', यह मैंहीहूं इसप्रकार जो जानता है, सो ऐसे अभेद विज्ञान से यहां (संसारविषे) जीवता हुआही, अर्थात् विनाही मरे, अविद्याकी ग्रन्थिको, अर्थात् ग्रन्थिवत् दृढ़भई जे अविद्याकी वासना तिसको नाश करेहै ॥ १० । ३२ ॥

इति मुण्डक उपनिषद्गत द्वितीयमुण्डकके प्रथमखण्डकी भाषाटीका समाप्त ॥

अथ द्वितीयमुण्डके द्वितीयखण्डः प्रारभ्यते।

आविः सन्निहितं गुहाचरन्नाममहत्पदमेत्रैतत् समर्पितम्। एजत्प्राणन्निमिषच्च यदेतज्जानथ सदसद्वरेण्यं परं विज्ञानाद्यद्वरिष्ठं प्रजानाम्॥ १। ३२॥

द्वितीयमुण्डकगतद्वितीयखण्डकी भाषाटीका प्रारंभ।

हे सौम्य! [अब जिसको एकबार आदेश (उपदेश) मात्रसे "ब्रह्मास्मीति" अद्वितीय ब्रह्म मैंहूं, ऐसा वाक्यार्थ का ज्ञान अनुभव पर्यन्त होवे नहीं, तिस पुरुषको वाक्यके अर्थ कीही वारम्बार भावना और युक्तिके अनुसन्धानरूप उपायका अनुष्ठान कर्तव्य उचितहै,इस अभिप्रायसेकहते हैं] शिष्यका प्रश्नहै कि, अरूप और सद्रूप जो अक्षर (ब्रह्म) है सो किसप्रकारसे जाननेको योग्य है॥उ०॥ "आविः सन्निहितं" प्रकाशरूपहै और सम्यक् स्थितहै सो ब्रह्म स्वयं ज्योति (प्रकाशरूप) है अर्थात् [विश्वके ज्ञानरूपकरके प्रकाशमान ब्रह्महै, तिसकी मुमुक्षुजन सदा भावना करें। यह अर्थ है सो अन्य ग्रन्थकारों ने भी कहा है जो है, जो भासताहै, सो आत्मरूप है। तिससे अन्य भासता नहीं, और अन्यहै भी नहीं। किन्तु केवल अपनी आप सत्तारूप संवित् (चैतन्य) भासता है। और ग्राह्य (विषय) और ग्रहीता (विषयी) यह सर्व कल्पना मिथ्याही है इति] और सम्यक् स्थित है अर्थात् [सर्व प्राणियों के हृदय विषे स्थित वागादि उपाधियों से शब्दादि विषयों को प्राप्तहुयेवत् ब्रह्मही जीवभावको प्राप्तहुयेवत् भासताहै, एतदर्थ सो अपरोक्ष है, इसप्रकार सदाही स्मरणकरे] कहिये "वागाद्युपाधिभिर्ज्वलति भ्राजतीति, श्रुत्यन्तरे" वाणीआदिक उपाधियोंसे प्रकाशता है और विराजमान है। इस अन्य श्रुतिके प्रमाणकरके शब्दादिकोंको प्रकाशताहुआ भासता है और दर्शन श्रवण मनन और

विज्ञान आदिक उपाधियों के धर्मोंसे प्रकटहुआ सर्व प्राणियों के हृदय विषे लखाजाताहै। और जो यह प्रकटहुआ ब्रह्म हृदयविषे सम्यक् स्थित है सो दर्शन श्रवणादिप्रकारों से "। गुहाचरंनाम" हृदयरूप गुहा विषेविचरनेवाला(गुहाचर ऐसे,नामवालाप्रख्यात है। और [अब यह सर्व जगत् कार्यरूप और परिच्छिन्नरूप है, क्योंकि आश्रय सहितको कार्यरूपहोने से और परिच्छिन्नरूप होने से घटादिकोंवत्। एतदर्थ जो सर्वका आश्रयरूप है, सोई मायाका आश्रय आत्मरूप है। इस युक्तिके अनुसन्धानको कहते हैं] "मह-त्पदं "। महत्पद है। जो ब्रह्म सर्वसे बड़ा होनेसे महत् है। और सर्व पदार्थोंका आश्रयहोनेसे सर्वसे प्राप्तहोताहै, याते पदहै एतदर्थ ही, महत्स्वरूप है ॥ प्र० ॥ सो ब्रह्म महत्स्वरूप कैसे है ॥ उ० ॥ "एजत्प्राणन्निमिषच्च "। चलनेवाला प्राणवाला निमिषवाला है। जो चलनेवाले पक्षी आदिक हैं, और प्राण अपान आदिक प्राणोंवाले मनुष्य पशुआदिक हैं, और निमिष आदिक क्रिया वालाहै, और जो अनिमिषवालाहै। और "अत्रैतत्समर्पितं "। यह इसविषे प्रवेशको पायाहै। यह सर्व इस ब्रह्मविषे प्रवेशको पाया है। और "यदेतज्जानथ"। जो है इसको जानो। ऐसा जो (सर्व का) आश्रयहै, इसको, हे शिष्य! तुम सर्वजानो और "सदसद्वरेण्यं "। सत् असत् स्वरूप है और वरेण्य है। सो ब्रह्म तुम्हारा आत्मरूपहै और सत्असत् रूपहै, क्योंकि सत्कहिये अमूर्त्त और असत् कहिये मूर्त्तरूप जो स्थूल और सूक्ष्म प्रपंचहै तिसको तिस ब्रह्म से भिन्न भावका अभाव है ताते, और सोई ब्रह्म वरेण्य है, अर्थात् नित्य होनेसे सर्वको माननेयोग्यहै। और "परंविज्ञानाद्यद्वरिष्ठं प्रजानां"। प्रजाके विज्ञानसे परहै और वरिष्ठहै। प्रजाके विज्ञान से पर (पृथक्) है, अर्थात् लौकिक ज्ञानसे अगोचरहै और वरिष्ठहै, अर्थात् सर्वश्रेष्ठ पदार्थोंविषे सोई एकब्रह्म अतिशयकरके श्रेष्ठ है। क्योंकि सर्व दोषोंकरके रहितहै ताते ॥ १। २२ ॥

हे सौम्य! [घटादिकोंवत् सूर्य्यादिकोंको जड़ताके होनेसेभी जो

यदर्चिमद्यदणुभ्योऽणु अस्मिन् लोका निहिता लोकिनश्च । तदेतदक्षरं ब्रह्म सप्राणस्तदुवाङ्मनः तदेतत्सत्यं तदमृतं तद्वेद्धव्यं सौम्य विद्धि॥ २ । ३४॥

प्रकाशवान्पने विषे विचित्रता है, तिसका ब्रह्मरूप प्रकाश विना असंभव है। तिस असंभवरूप अर्थापत्ति प्रमाणसेभी तिसका कारण निश्चय करनेको योग्यहै इसप्रकार यहां कहते हैं] "यदर्चिमत्" । जो प्रकाशवान्हैं। जो ब्रह्म अपने प्रकाशसे सूर्य्यादिकोंको प्रकाशताहै एतदर्थ प्रकाशवान्है [ब्रह्मकोप्रकाशवान् होनेसे सूर्यादिकोंवत् इन्द्रियोंका विषयत्व प्राप्तभया, इस शंकाका यहां निषेध करते हैं] और "यदणुभ्योऽणु" । जो सूक्ष्मसेभी सूक्ष्महै। किंवा जो सामा (अन्नविशेष) आदिक सूक्ष्म वस्तुओं से भी सूक्ष्म है॥ शंका॥ [तब ब्रह्मको परमाणु के परिमाणकरके युक्तपना होगा॥ उ०॥ यह शंका करनेको योग्य नहीं ऐसा कहते हैं] और वो पृथिव्यादि स्थूल वस्तुओंसेभी अतिशयकरके स्थूल है "अणोरणीयान् महतो महीयान्" [शंका, तब ब्रह्मस्थूल होनेसे अन्य आधारवाला होवेगा॥ उ०॥ यह शंका करनेको योग्यनहीं, ऐसा कहते हैं] "यस्मिन् लोका निहिता लोकिनश्च" । जिसविषे लोक और लोकनिवासी स्थित हैं। जिसविषे पृथिवीआदिक लोक और जो मनुष्यादिक चैतन्यके आश्रय प्रसिद्ध सर्वलोक के निवासी प्रजा हैं सो स्थित हैं। और "तदेतदक्षरं ब्रह्म सप्राणस्तदुवाङ्मनः" । सो यह अक्षर ब्रह्महै सो प्राणहै और सो वाक् और मनहै। [अब प्राणादिकों की जो प्रवृत्ति है सो चैतन्य अधिष्ठानरूप निमित्तवाली है जड़ोंकी प्रवृत्ति होनेसे रथ आदिकोंकी प्रवृत्तिवत् और चैतन्य के भेद होने विषे प्रमाणका अभाव है ताते एक चैतन्यमात्र है ऐसे विचार करना। यह कहतेहैं] सो यह सर्वका आश्रय अक्षर (अविनाशी) ब्रह्म है सो प्राणहै और सोई वाक् (वाणी) और मन है। और च शब्द करके उपलक्षित सर्व कारणरूपहै। अर्थात् प्राणादिकों के

धनुर्गृहीत्वौपनिषदं महास्त्रं शरं ह्युपासानिशीतं सन्धीयत । आयम्य तद्भावगतेन चेतसा लक्ष्यं तदेवाक्षरं सौम्य विद्धि ॥ २ । ३५ ॥

भीतर विद्यमान जो चैतन्यहै, सो उनका आश्रय होनेसे प्राण और इन्द्रियादिक सर्व संघातरूप है। क्योंकि "प्राणस्यप्राणः" प्राणकाभी प्राणहै । इत्यादि अन्यश्रुतियोंका प्रमाणहै ताते। और जो प्राणादिकोंके भीतर चैतन्यरूप अक्षरहै " तदेतत्सत्यं तदमृतं तद्वेद्धव्यं सौम्यविद्धि " । सो यह सत्यहै, सो अमृतहै, सो बेधनेको योग्यहै; हे सौम्य ! बेधनकर । सो यह सत्य है, एतदर्थ सो अमृत (अविनाशी) है सो मन करके बेधने को (ताड़नाकरनेको) योग्यहै । अर्थात् तिस बिषे मनका समाधान करना योग्य है । हे सौम्य ! जिसकरके यह ऐसे है, तिसही करके बेधन करो अर्थात् (अक्षर बिषे चित्त को एकाग्र करो) ॥ २ । ३४ ॥

हेसौम्य ! [अब विचारबिषे असमर्थको ॐकारका आश्रयकरके ब्रह्म और आत्माबिषे क्रममुक्तिरूप फलवाली चित्तकी एकाग्रता के देखावनेका आरम्भ करतेहैं । यहां यह अभिप्रायहै कि "प्रणवो ब्रह्मेति" । ॐकार ब्रह्महै । इसप्रकार ध्यानकरनेवाले जितेन्द्रिय पुरुषको जो ॐकार सम्बन्धी प्रतिबिम्ब स्फुरता है, "तदात्मेति" । सो आत्मा है । ऐसा जो चिंतन सो प्रणवरूप धनुषबिषे बाणका सन्धान है । और तिस ब्रह्मका चैतन्यके प्रतिबिम्बरूप जीवसेएकतारूप जो अनुसन्धान, सो लक्ष्यका बेधहै] ॥ शंका ॥ कैसे बेधने को योग्यहै ॥ उ० ॥ " धनुर्गृहीत्वौपनिषदं महास्त्रं शरं ह्युपासानिशीतं सन्धीयत " । उपनिषद्बिषे प्रसिद्ध धनुषरूप महान् अस्त्रको लेके निरन्तरध्यानसे तीक्ष्णकिये बाणको सन्धान करना । उपनिषदोंबिषे प्रसिद्ध प्रतिपाद्य जे धनुषरूप महान् अस्त्र तिसको लेके तिस धनुषबिषे, निरन्तर ध्यानकरके तीक्ष्णकिये बाणको सन्धान करना । जिसकरके यहां हाथसेही धनुषका आकर्षण (खींचना)

प्रणवो धनुः शरो ह्यात्मा ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते। अप्रमत्तेन वेद्धव्यं शरवत्तन्मयो भवेत् ॥ ४ । ३६ ॥

सम्भवता नहीं, एतदर्थ "आयम्य तद्भावगतेन चेतसा लक्ष्यं तदेवाक्षरं सौम्य विद्धि"। तिसविषे भावनाको प्राप्तभये चित्तसे आकर्षण करके हे सौम्य ! तिसही अक्षररूप लक्ष्यको वेधनकरो। तिसअक्षर (ब्रह्म) रूप लक्ष्यविषे भावनाको प्राप्तभये चित्तसे इन्द्रिय सहित अन्तः करणको अपने विषय से निवृत्तकरके लक्ष्यविषेही प्राप्तकरने रूप धनुषका आकर्षण करके, हे सौम्य ! तिसही उक्त लक्षणवाले अक्षररूप लक्ष्यको वेधनकर, अर्थात् लक्ष्य विषे चित्तको एकाग्र करो (यह वेदकी आज्ञाहै) ॥ ३ । ३५ ॥

हे सौम्य ! अब कथन किये जे धनुषादिक तिनको स्पष्ट कहते हैं "। प्रणवोधनुः "। प्रणव ॐकार धनुषहै। जैसे धनुष जो है सो लक्ष्य (निशाना) विषे बाणके प्रवेशका कारण है, तैसे आत्मारूपी बाणका अक्षररूप लक्ष्यविषे प्रवेशका कारण ॐकार है। और जैसे अभ्यासकिये धनुषसे संस्कार युक्त, और तिस धनुषरूप आश्रयवाला हुआ बाण लक्ष्यविषे स्थित होताहै, तैसेही जिस करके अभ्यास किये ॐकारसे संस्कार (ध्यान) युक्त, और तिस ॐकाररूप आश्रयवालाहुआ आत्मा (बुद्धिविशिष्टचैतन्य) अक्षर (ब्रह्मविषे स्थित होता है, एतदर्थ ॐकार जो है सो धनुषवत् धनुषहै, और "। शरोह्यात्मा "। (आत्मारूपी) बाणहै। अर्थात् उपाधि करके लक्षित परमात्माही, जलादिगत सूर्य्यादिकों के प्रतिबिम्बादिकोंवत् इस देहरूप घटविषे सर्व बुद्धि (रूपजल) की वृत्ति (रूपतरंगन) का साक्षी होनेकरके प्रवेशको पायाहै सो (आत्मा) बाणवत्है और "। अप्रमत्तेनवेद्धव्यं "। प्रमादसे रहितपने करके वेधनकरने को योग्यहै। आत्माके अर्थ विषयोंकी प्राप्तिकी तृष्णा रूप प्रमादसे रहित, और सर्वसे विरक्त औरजितेन्द्रिय, और एकाग्र चित्तसे वेधने को योग्यहै। और "। ब्रह्मतल्लक्ष्यमुच्यते "। ब्रह्मसो लक्ष्य कहते हैं। ऐसा जो अक्षर (ब्रह्म) तिसको लक्ष्य कहते हैं।

अस्मिन् द्यौः पृथिवी चान्तरिक्षमेते मनः सहप्राणैश्च सर्व्वैः । तमेवैकं जानथ आत्मानमन्यावाचो विमुञ्चथ अमृतस्यैष सेतुः ॥ ५ । ३७ ॥

एतदर्थ तिस बेधन करने के पश्चात् "। शरवत्तन्मयोभवेत् ।" । बाणवत् तन्मय होताहै । बाणवत् तन्मय (लक्ष्यकारूप) होता है । जिस प्रकार बाणको लक्ष्यके साथ एकतारूप फल होताहै, तैसे देहादिक अनात्माकार वृत्तियों के तिरस्कार होनेसे अक्षर (ब्रह्म) के साथ एकरूपतामय फलको सम्पादन करना, यह अर्थ है ॥ इति सिद्धम् ॥ ४ । ३६ ॥

हे सौम्य ! अक्षर (ब्रह्म) दुःख से जानने के योग्य होने करके तिसका वारम्बार जो कथन है सो उसका सुखपूर्वक लक्ष्य करावने के अर्थ है, एतदर्थ तिसहीको वारम्वार कहते हैं "। अस्मिन्द्यौः पृथिवी चान्तरिक्षमेते मनः सह प्राणैश्च सर्व्वैः ।" । जिस विषे स्वर्ग पृथिवी और अन्तरिक्ष आकाश प्रवेशको पाया है । सर्व करण (इन्द्रियां) सहित मन (प्रवेशको पायाहै) जिस अक्षर पुरुषविषे स्वर्ग पृथिवी और आकाशरूप सर्व जगत् प्रवेशको पायाहै, और अन्य सर्वप्राण (करण, इन्द्रियां) करके सहित मन प्रवेश को पायाहै । और "। तमेवैकं जानथ आत्मानमन्यावाचो विमुञ्चथ ।" । तिसही एक आत्माको जानके अन्यवाणी को छोड़ो । हे सौम्य ! तिसही सर्वके आश्रय एक अद्वितीयरूप तुम्हारे और अन्य सर्व प्राणधारियों के प्रत्यक्रूप आत्माको जानो और तिस आत्माको जानके अन्य अपर विद्यारूप वाणीको और तिस करके प्रतिपाद्य साधन सहित सर्व कर्मको परित्याग करो, [अब साधन सहित सर्व कर्म को त्यागके एक आत्माही जानने को योग्यहै, इस विषय में कारण कहते हैं "। अमृतस्यैषसेतुः ।" । यह अमृतका सेतु है । क्योंकि यह सम्यक् आत्मज्ञान अमृत का, अर्थात् मोक्षरूप पारकी प्राप्तिके अर्थ सेतु (पुल) है क्योंकि संसाररूप महोदधि

अराइव रथनाभौ संहता यत्र नाड्यस्स एषोऽन्तश्चरते बहुधा जायमानः । ॐमित्येवं ध्यायथ आत्मानं स्वस्ति वः पारायतमसः परस्तात् ॥ ६ । ३८ ॥

(बड़ासमुद्र) के पार जाने को (मुमुक्षु के अर्थ) कारण है ताते, और जैसे यह आत्मज्ञान मोक्षकी प्राप्तिके अर्थ सेतु पुलवत् सेतुहै । तैसे "तमेवविदित्वातिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनायेति"। तिसही को जानके मृत्युको लंघिके जाता है, मोक्ष की प्राप्तिके अर्थ अन्यमार्ग नहीं। । यह अन्य श्वेताश्वतरकी श्रुति भी कहती है ' इति वेदानुशासनम् ' ॥ ५ । ३७ ॥

हे सौम्य! "अराइव रथनाभौसंहता यत्रनाड्यस्सएषोऽन्तश्चरतेबहुधाजायमानः"। जैसेरथकी नाभिविषे प्रवेशको प्राप्तभये अरे हैं तैसे जिसविषे नाड़ियां सम्यक् प्रवेश को प्राप्तभई हैं, सो यह तिस हृदयविषे वर्तता है, अनेक प्रकार होता है। जिसप्रकार रथकी नाभि (मध्यकाकाष्ठ) विषे प्रवेशको प्राप्तभये अरा (सीधेकाष्ठ) हैं, इसप्रकार जिस हृदयविषे, सर्व ओरसे देहविषे व्यापनेवाली प्रसिद्ध नाड़ियां सम्यक्प्रकार प्रवेश को पाई हैं, तिस हृदयविषे बुद्धिकी वृत्तियों का साक्षीरूप सो यह प्रसंग विषे प्राप्त भया आत्मा तिस हृदयके मध्यविषे देखता हुआ, सुनताहुआ, मनन करता हुआ, जानता हुआ, वर्तता है, और क्रोध हर्ष आदिक वृत्तियों करके अनेक प्रकार को हुयेवत् होताहै । अर्थात् अन्तःकरणरूप उपाधि के अविवेक करके युक्त होनेसे इसको लौकिक जन हर्षवान् और क्रोधवान् कहते हैं । तिस "ॐमित्येवं ध्यायथ आत्मानंस्वस्तिवः पारायतमसः परस्तात्"। आत्माको ॐ इस प्रकार से ध्यानकरो तमसेपर पारके अर्थ निर्विघ्न होवो। आत्माको ॐ इसप्रकार से ॐकाररूप आश्रयवाले हुये शास्त्रोक्त कल्पना से ध्यान करो । इस प्रकार ज्ञानवान् आचार्य ने शिष्य के अर्थ कहने योग्य जो वस्तुहै सो कहा । अब ब्रह्म विद्याके जानने

यः सर्वज्ञः सर्वविद्यस्यैषमहिमा भुवि दिव्ये ब्रह्मपुरे ह्येष व्योम्न्यात्माप्रतिष्ठितः । मनोमयः प्राणशरीरनेता प्रतिष्ठितोऽन्ने हृदयं सन्निधाय तद्विज्ञानेन परिपश्यन्ति धीरा आनन्दरूपममृतं यद्विभाति ॥ ७ । ३९ ॥

की इच्छावाले कर्मरहित और मोक्ष के मार्ग में प्रवृत्तभये जे जिज्ञासु शिष्य हैं, तिनको विद्यारहित होने करके, आचार्य ब्रह्मकी प्राप्तिको चाहते हैं । हे शिष्य ! तुमको मैंने कथन किया जो [सर्वेश्वरपना और मनोमयपना आदिक गुणकरके युक्त ब्रह्मका, हृदयकमलविषे जो ध्यान है, सो क्रम मुक्तिरूप फलवालाहै । एतदर्थ हे मन्दबुद्धिवाले ब्रह्मवेत्ता (अधिकारी) ! तुम तिस ध्यानको करो । इसप्रकार देखावने के अर्थ जो इस संसाररूप महोदधिको लंघिके प्राप्तहोने योग्य परविद्याका विषय है इस प्रकार कहा है] यह संसाररूप महान् अपार समुद्र तिसको लंघिके प्राप्तहोने योग्य पर (ब्रह्म) विद्याका विषय है सो तुमको मेरे उपदेश से पश्चात् अविद्यारूप तमसे पर [कर्मके सङ्गीजनों की सङ्गति से कर्मविषे श्रद्धा और विषयों विषे श्रद्धा होती है । सो वाक्यार्थ के ज्ञानकी अनुभवपर्यन्तताकी प्रतिबन्धकरूप विघ्न है । सो विघ्न तुमको मत प्राप्त होय । इसप्रकारका कथनहै परन्तु वाक्यार्थ के अनुभव के उत्पन्न भये फलकी प्राप्ति विषे विघ्नकी शङ्का नहीं है, इस अभिप्राय से कहते हैं] जो अविद्यारूप तम (अन्धकार) का पर पारहै, तिसके अर्थ, अर्थात् अविद्या रहित ब्रह्मात्मस्वरूप की प्राप्तिके अर्थ निर्विघ्न जैसे होय तैसे होवो इत्यादेश॥६।३८॥

हे सौम्य ! (॥ प्र० ॥ सो आत्मा किस विषे वर्तताहै ॥ उ० ॥) "। यः सर्वज्ञःसर्वविद्यस्यैषमाहिमाभुविदिव्येब्रह्मपुरेह्येषव्योम्न्यात्माप्रतिष्ठितः"। जो सर्वज्ञ है, सर्ववित्है, और जिसकी यह पृथिवी विषे महिमाहै, सो यह आत्मा प्रकाशक ब्रह्मपुर विषे विद्यमान आकाश विषे स्थितहै । जो सर्वज्ञ है, सर्ववित् है, और जिसकी

यह प्रसिद्ध पृथिवी विषे महिमा (विभूति है) ॥प्र०॥ कौन यह महिमा है ॥उ०॥ यह स्वर्ग और पृथिवी दोनों जिसकी आज्ञाविषे धारण कियेहुये स्थित होते हैं। और सूर्य्य और चन्द्रमा यह दोनों जिसकी आज्ञाविषे, अर्द्धदग्ध काष्ठके भ्रमावनेरूप अलात (बनेठी) चक्रवत् निरन्तर (आकाशमार्गमें) भ्रमते हैं। और जिसकी आज्ञा विषे वर्त्तमान नदियां और समुद्र अपने देशको लंघिके बर्त्ततेनहीं। तैसे स्थावर और जंगमरूप यावतहैं, सो जिसकी आज्ञासे अपने२ नियममें स्थितहैं। और तिसही प्रकार षट्ऋतु औरदो अयन, और साठअब्द (संवत्सर, वर्ष, साल) जो हैं सो जिसकी आज्ञाको लंघिकेबर्त्तते नहीं। तैसेही कर्त्ता कर्म्म और फल जो हैं सो जिसकी आज्ञासे अपने २ कालको लंघिके बर्त्तते नहीं ॥ सो यह महिमा है ॥ इसप्रकार जिसकी पृथिवीलोकबिषे महिमाहै, सो यह सर्वज्ञ है। सो यह आत्मा सर्वबुद्धि वृत्तिके प्रकाशक हृदयरूप ब्रह्मपुर विषे विद्यमान आकाश विषे स्थितहुयेवत् भासता और जिस करके आकाशवत् सर्व व्यापक आत्माको गमनागमन वा स्थिति अन्यप्रकारसे संभवे नहीं। एतदर्थ सो आत्मा मनकी वृत्तिसेही तिसहृदयाकाश नामवाले ब्रह्मलोक विषे स्थितहुआ भासता है। और "मनोमयः प्राणशरीरनेता प्रतिष्ठितोऽन्ने हृदयंसन्निधाय" मनोमयहुआ प्राण और शरीर का लेजानेवालाहै, और अन्नविषे बुद्धिको स्थापित करके स्थितभया है। मनरूप उपाधिवाला होनेसे मनोमयहुआ यह आत्मा प्राण और शरीर का लेजानेवाला है। अर्थात् स्थूल शरीरसे अन्य सूक्ष्म शरीर को लेजाता है। और नित्य नित्य बढ़नेवाले और घटनेवाले भोजन किये अन्न के परिणाममय पिण्डरूप अन्नविषे हृदयकमलगत छिद्र में अपनी उपाधिरूप बुद्धिको भलीप्रकार स्थापित करके स्थितभया है। और जिसकरके बुद्धिकी स्थितिही आत्माकी अन्न विषे स्थिति है, एतदर्थ यहां, बुद्धिको स्थापित करके अन्नविषे स्थित होताभया ऐसा कहाहै। "तद्विज्ञानेन परिपश्यन्ति धीरा आनन्दरूपममृतं

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः । क्षीयन्ते चास्य कर्म्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे ॥ ८ । ४० ॥

यद्विभाति" ।तिसको धीर श्रेष्ठज्ञानसे सर्वओरसे पूर्ण जानते हैं (तिनको) आनन्दरूप और अमृतरूपहुआ विशेषकरके भासता है। तिस आत्मतत्त्वको जो धीर (बुद्धिमान् विवेकी) पुरुष हैं, सो शास्त्र और आचार्य के उपदेशसे जन्य और शम दम ध्यान और वैराग्यकरके उद्भवको प्राप्तभये उत्तम ज्ञानसे सर्वओर से पूर्ण जानते हैं तिन पुरुषोंको जो सर्वअनर्थ और दुःख और श्रमसे रहित आनन्दरूप और अमृत अविनाशी रूप हुआ अपने आप विषे सदैव विशेषकरके भासता है॥ सोई आत्मा अक्षर ब्रह्म है॥७।३९॥

हे सौम्य ! अब इस (जिज्ञासु) पुरुषको (आचार्यकरके) कथन किये, अर्थात् (उपदेशकिये) सम्यक् परमात्मज्ञानका (जो फल होताहै सो) यह कहते हैं ॥ "। तस्मिन्दृष्टे परावरे ।" ।तिसपर और अवरके देखने से। अर्थात् तिस उपदेशकिये परमात्माविषे, कारण रूपसे पर (श्रेष्ठ जे प्रकृति) और कार्यरूपसे अवर (अश्रेष्ठ जगत्) सो रज्जुमें सर्पवत् वाचारम्भणमात्रही है सो सर्वज्ञ असंसारी परमात्माको, "यह साक्षात् मैंहूं" इसप्रकार (अभेदतासे) देखेहुये "। भिद्यते हृदयग्रन्थिः ।" । हृदयकीग्रन्थि भेदनको पावताहै। इस पुरुषकी अविद्याकी वासनामय हृदयकी ग्रन्थि, अर्थात् हृदयशब्द करके उपलक्षित बुद्धिके आश्रितग्रन्थि अपने नाशको प्राप्तहोती है ॥ [यहां यहशङ्कासमाधानरूप एक विचारहै, कि यहां (श्रीशङ्कराचार्य्यने) भाष्यबिषे, अविद्याकी वासनाके समुदायरूपहृदय की ग्रन्थिभेद (नाश) को प्राप्त होती है, ऐसाकहाहै, तिस कहनेका क्याअर्थ (प्रयोजन)है, तिसको जाननेके अर्थ वादी शङ्काकरताहै ॥ शङ्का ॥ हे सिद्धान्तिन् ! बुद्धिके विद्यमानहोते अविद्या आदिक का भेद (नाश) ज्ञानकाफलहै, अथवा तिसबुद्धिकी निवृत्तिकेहुये अविद्या आदिकका भेद (नाश) ज्ञानका फलहै, यहदो विकल्पहैं, तिन

में प्रथमपक्ष बने नहीं क्योंकि उपादानके विद्यमानहुये कार्य के अत्यन्ताभावका असम्भवहै ताते। और द्वितीयपक्षभी बनता नहीं, क्योंकि ज्ञानको अज्ञानसेही साक्षात् विरोधकी प्रसिद्धिहै ताते ॥ अथवा बुद्धिभी अनादि है वा सादिहै, इसका जो विचारकरिये तो भी प्रथमपक्ष बने नहीं । क्योंकि " एतस्माज्जायतेप्राणोमनःसर्व्वेन्द्रियाणिच," । इससे प्राणहोते हैं, मन होताहै, सर्वइन्द्रियां होतीहैं । इस श्रुति से विरोध होताहै ताते । और (सादिरूप) द्वितीयपक्ष भी बनता नहीं, क्योंकिप्रलयविषे ब्रह्मज्ञान विनाही बुद्धि के नाशका सम्भवहै ताते। और बुद्धिके सादिपनेके होनेसे बुद्धि का उपादान जब साक्षात् ब्रह्मही है, तब तिस उपादानरूप ब्रह्म के नाश हुये विना बुद्धिका अत्यन्त नाश होनेका नहीं। और जो कदापि बुद्धिकी उपादान मायाहै, तब सो द्रष्टागत ज्ञान से नाश होनेको योग्यनहीं । क्योंकि लोकविख्यात जो मायावी पुरुष तिस विषे स्थित जो माया तिसका द्रष्टागत ज्ञानसे नाशका अदर्शनहै ताते। किंवा बुद्धिका जो नाशहै, सो तिस बुद्धिका फलनहीं क्योंकि अपने नाशको अफलरूपताहै ताते। और सो बुद्धिका नाश आत्मा का भी फल नहीं, क्योंकि तिस आत्माको बुद्धिके संगका अभाव है ताते, तिस बुद्धिके नाशको अफलरूपता होनेसे । किंवा आत्मा के अविद्या आदिकों के अनाश्रयपनेका कथन है ताते सो श्रुतिसे विरुद्धहै । क्योंकि आरम्भविषे " अविद्यायामन्तरेवर्त्तमानाः " । अविद्याके भीतर वर्त्तमान। ऐसा श्रवण होनेसे अरु समाप्ति विषे "अनीशयाशोचतिमुह्यमानः" । अनीशासे मोहको पाया हुआ शोच (शोक) को करता है' ऐसा श्रवण होने से॥ और जो कहो कि, बुद्धि गतही अविद्यादिकोंका आत्माविषे अध्यास होता है, तो अध्यास होताहै, इसशब्दका कौन अर्थ है । आत्माविषे स्थापित करते हैं (सो अध्यासहै) वा भ्रान्ति से देखते हैं (सो अध्यास है) । तिनमें प्रथमपक्ष (जो आत्माविषे स्थापनो सो) बनेनहीं क्योंकि अन्यके धर्मकी अन्यके विषे स्थिति(होने)का असम्भवहै ताते। और जो द्वि-

तीयपक्ष (भ्रान्तिसे) कहोगे तो भ्रांतिसे (जो देखते हैं सो) किसकर के देखते हैं, आत्माकरके वा बुद्धिकरके तहां प्रथमपक्षजो आत्मा करके (भ्रान्ति) सो बनेनहीं, क्योंकि आत्माको अविद्याकी आश्रयताका अनङ्गीकार है। ताते और द्वितीयपक्ष जो बुद्धिकरके सोभी देखना बनेनहीं, क्योंकि बुद्धिको आत्माकेताईं विषयकरनेका असम्भवहै, तिसकरके आत्मागत अविद्या आदिकोंके दर्शनका अभाव है ताते और भ्रान्तिको अपने आश्रयबिषे स्थित यथार्थ अनुभवसे निवृत्त होनेकी प्रसिद्धिहै ताते। और बुद्धिको अनुभवकीआश्रयता का प्रसंगहै ताते। एतदर्थ इसभाष्यका सम्यक् अर्थ हम देखते नहीं॥ उ० ॥ हे वादिन्! अब तेरी शङ्काका समाधान कहतेहैं तिसको श्रवणकरो। चैतन्यके आधीन अनादि अनिर्वचनीय जो अविद्या है, सो चैतन्यको अविच्छिन्नकरके आपकरके अविच्छिन्न (विशिष्ट) चैतन्यको बुद्धि आदिकों से तादात्म्यरूपकरके वर्त्तती है, तिस अविद्या के ब्रह्मात्माके साक्षात्कार से निवृत्त होने रूपके अङ्गीकार से, तिस अविद्याकी निवृत्तिकेहुये तिस अविद्या से उत्पन्न जो हृदय की ग्रन्थियां तिनकाभेद (नाश) श्रुतिने कहाहै। और भाष्यकारका जो बुद्धिके आश्रयकरके हृदयकी ग्रन्थिका कथनहै, सो बुद्धिको उक्त तादात्म्यरूप अहङ्कारको विशेषण होने करके अविद्या आदिकों के व्यावहारिकपने के अभिप्राय से है। और आत्माको ग्रन्थिकी अनाश्रयताका जो कथन है, सो आत्माकी निर्विकारताके अभिप्रायसे है] तैसे 'कामायेऽस्य हृदिश्रिताः—इतिश्रुत्यन्तरात्' । जो काम इसके हृदयबिषे आश्रित हैं। यह अन्य कठवल्लीकी श्रुतिके प्रमाणसे बुद्धिके आश्रित कथन किये जे काम हैं, सो नाश को प्राप्त होते हैं। और यह ग्रन्थि हृदय के आश्रितहै, आत्माके आश्रय नहीं, ऐसा जानाजाता है। और "छिद्यन्ते सर्व्वसंशयाः" । सर्व संशय छेदन (नाश) को पावते हैं। इसके लौकिक जनों को मरणपर्यन्त गङ्गाके प्रवाहवत् प्रवृत्तभये जो अज्ञानको विषय करनेवाले सर्वसंशयहैं सो अपने नाशको प्राप्त होते हैं। और "क्षी-

हिरण्मये परेकोशे विरजं ब्रह्मनिष्कलम्। तच्छुभ्रं ज्योतिषां ज्योतिस्तद्यदात्मविदो विदुः॥ ९। ४१॥

यन्ते चास्य कर्माणि "। इसके कर्म क्षयको पावते हैं। इस निःसंशयभये अविद्यारहित पुरुषके, जो ज्ञानोत्पत्तिसे पूर्व इस जन्म विषेकिये। और फलके आरम्भसे रहित जन्मान्तर विषे किये। और इसजन्म विषे ज्ञानोत्पत्ति के साथ होनेवाले, जे कर्म सो सर्व क्षय को पावते हैं। परन्तु इस वर्त्तमान जन्मके आरम्भक जे प्रारब्ध कर्महैं सो क्षयको (नाशको) पावते नहीं, क्योंकि सो अपना फल देनेको प्रवृत्तहोचुके हैं ताते। इसप्रकार यह सम्यक् ज्ञानवान् पुरुष जन्म मरणादिरूप संसारके नाशहोनेसे मुक्तहोताहै। यह अभिप्राय है॥ ८। ४०॥

हे सौम्य! कथनकिये अर्थकोही संक्षेपसे कहनेवाले अग्रिम तीन मन्त्रहैं, तिनकाभी व्याख्यान अब करतेहैं। "हिरण्मये परे कोशे विरजं ब्रह्मनिष्कलम्।" पर प्रकाशमय कोशविषे रजरहित निष्कल ब्रह्महै। तलवारके कोश (म्यान) वत्, आत्मस्वरूपकी प्राप्तिका स्थान होनेसे, और सर्व के भीतर होनेसे पर जो बुद्धि के विज्ञानरूप प्रकाशमय कोशहै तिसविषे अविद्या आदिक दोषरूप रज (मल) से रहित और सर्व से बड़ा होनेसे और सर्वका एक आत्मा होनेसे ब्रह्मरूप, और सोलह कलारूप अवयवसे रहित होनेसे निष्कलरूप है। और जिसकरके, विरज और निष्कलरूप है, तिसहीकरके "तच्छुभ्रं ज्योतिषां ज्योतिस्तद्यदात्मविदोविदुः।" सो शुभ्रहै (और) सर्वज्योतियों का ज्योति है, ऐसा जो है तिसको आत्माके जाननेवाले जानते हैं। सो शुभ्र (शुद्ध) है। और अग्निआदि सर्वज्योति (प्रकाशवान्) का भी सो ज्योति (प्रकाशक है)। अर्थात् अग्निआदिकोंका भी जो ज्योतिपना है, सो अपने अन्तरगत ब्रह्मात्म चैतन्यरूप ज्योति का किया है। और जो अन्य प्रकाशोंसे अभासमान आत्मरूप ज्योति

न तत्र सूर्य्यो भाति न चन्द्रतारकं नेमाविद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः । तमेवभान्तमनुभाति सर्व्वं तस्य भासा सर्व्वमिदं विभाति ॥ १० । ४२ ॥

(प्रकाश) है, सोई परमज्योति है । ऐसा जो परमज्योति है तिसको, शब्दादि विषय और बुद्धिकी वृत्तिके साक्षीरूप आत्मा को जाननेवाले आत्माकार वृत्तिके अनुसारी आत्मवेत्ता विवेकी पुरुष जानते हैं । और जिसकरके सो परम ज्योति है, तिसही से वो आत्माकारवृत्ति के अनुसारी पुरुषही तिसको जानते हैं । और तिससे अन्य जे बाह्य अर्थाकारवृत्ति के अनुसारी पुरुष हैं सो जानते नहीं ॥ ६ । ४१ ॥

हे सौम्य ! ॥ प्र० ॥ सो ब्रह्म ज्योतियों का ज्योति कैसे है ॥ उ० ॥ " न तत्र सूर्य्यो भाति न चन्द्रतारकं नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः " । तिसविषे सूर्य भासता नहीं (और) चन्द्रमा (और) तारागण भासते नहीं (और) यह बिजलियां भासती नहीं, यह अग्नि कहांसे भासेगा । तहां, अर्थात् तिस अपने आत्मारूप ब्रह्मबिषे, सर्वका प्रकाशक सूर्य भी भासता नहीं, अर्थात् ब्रह्मको प्रकाशता नहीं । और सो सूर्य तिसहीके प्रकाशसे अन्य सर्व अनात्माके समूहको प्रकाशता है, परन्तु तिसका अपने आपसेही प्रकाशके करने बिषे सामर्थ्य नहीं । यह अर्थ है । और तैसेही तिसबिषे चन्द्रमा सहित तारागणके भासता नहीं और यह बिजलियां जो मेघाश्रितहुई प्रकाशती हैं सो भी भासती (प्रकाशती) नहीं तब यह हमलोकों करके प्रकटाकिया जो अग्नि सो कहांसे भासेगा किन्तु बहुत कहनेसे क्याहै " तमेव भान्तमनुभाति सर्व्वं तस्य भासा सर्व्वमिदं विभाति " । सर्व तिसही के भासमानहुये पीछे भासता है, और तिसहीके प्रकाशसे यह सर्व भासता है । परन्तु यह [यहां प्रकट अर्थ बिषे बाधित भये जगत्की अनुवृत्ति (बाधभये पीछे प्रतीति) देखाई इस करके

ब्रह्मैवेदममृतं पुरस्ताद् ब्रह्म पश्चाद् ब्रह्मदक्षिणतश्चोत्तरेण। अधश्चोर्द्ध्वञ्च प्रसृतं ब्रह्मैवेदं विश्वमिदं वरिष्ठम् ॥ ११ । ४३ ॥

इति द्वितीयमुण्डके द्वितीयखण्डः ॥

शरीर सहित को बन्ध भ्रान्तिकी निवृत्तिरूप जीवन्मुक्ति विशेषको प्राप्त होती नहीं] जो जगत् भासता है सो सर्व तिसही परमेश्वर के स्वरूप से प्रकाशरूप होने से भासमान होने पीछे भासता है, जैसे अग्निके संयोगसे जल और अर्द्धदग्ध काष्ठआदिक जो है, सो जलावनेवाले अग्निके पीछे जलावते हैं, आपसे नहीं, । तैसेही सर्व जगत् तिसही के प्रकाशमान हुये पीछे प्रकाशता है, आपसे नहीं । तिसही के प्रकाश से यह सर्वसूर्य्यादि प्रकाशमानों कर के युक्त जगत् भासताहै ।['तस्यभासा सर्वमिदं विभाति' । तिस के प्रकाश से सर्व यह भासता है । इसप्रकार इस ब्रह्मकी स्वयं प्रकाशरूपता विषे तात्पर्य कहते हैं] जिस करके इसप्रकार सोई ब्रह्म भासताहै, और कार्यगत विविधप्रकारके प्रकाश से विशेषकर के भासता (प्रकाशता) है, एतदर्थ तिस ब्रह्मका स्वरूपसे प्रकाशरूपतापना जानाजाताहै ।और जो वस्तु स्वरूपसे अविद्यमान है, सो अन्यको प्रकाशने विषे समर्थ होती नहीं, क्योंकि स्वरूपसे अविद्यमान प्रकाशवाले घटादिकों को अन्यकी प्रकाशकता देखने में आवती नहीं ताते, और प्रकाशरूप सूर्य्यादिकों को अन्यकी प्रकाशकता को देखते हैं ताते ॥ १० । ४२ ॥

हे सौम्य ! अब [समाप्तिके मन्त्रका तात्पर्य कहते हैं, इस मन्त्र विषे ब्रह्मसे विविध प्रकारका करते नहीं, ऐसा तिसका विकार (कार्य) रूप जगत् जो यह स्थाणुहै, सो पुरुष है, इस वाक्यवत् 'सर्व्वंखल्विदंब्रह्म' । सर्व ब्रह्मही है । ऐसे बाधविषे समानाधिकरणके हुये अन्वय और व्यतिरेक करके बाधरूप अभावके निषेधसे ब्रह्ममात्र बोधन करते हैं] जो, सो ज्योतियों का ज्योति

अथ तृतीयमुण्डके प्रथमखण्डः प्रारभ्यते ॥

द्वासुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षम्परिषस्वजाते। तयोरन्यःपिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्योऽभिचाकशीति॥ १। ४४ ॥

। वाणी से आरम्भ किया विकार नाममात्र है । तिसका कार्य है सो सर्व मिथ्या है । इस विस्तारसे हेतुकरके प्रतिपादन किये अर्थ को वेदस्थानी इस मन्त्रसे फेर समास करते हैं । यह जो अविद्या युक्त दृष्टिवाले पुरुषको "।ब्रह्मैवेदममृतंपुरस्ताद्ब्रह्म पश्चाद्ब्रह्मदक्षिणतश्चोत्तरेण"। अग्रभाग विषे भासमान अमृतरूप ब्रह्मही है, पीछे ब्रह्महै, दक्षिण ओरसे ब्रह्महै, उत्तर ओर से ब्रह्महै । अग्रभागबिषे भासमान वस्तुहै, सो उक्त दक्षिणावाला अमृतरूप ब्रह्म ही है, तैसे पीछे ब्रह्म है, तैसे दक्षिण ओरसे ब्रह्महै, तैसे उत्तर (वाम) ओरसे ब्रह्महै । तैसेही "अधश्चोर्द्ध्वञ्चप्रसृतंब्रह्मैवेदं विश्वमिदंवरिष्ठम्" । नीचे पुनः ऊपर ब्रह्महै, यह फैलाहुआ ब्रह्मही है, यह जगत् अत्यन्त श्रेष्ठ ब्रह्मही है । नीचे ब्रह्महै और ऊंचे ब्रह्महै । और अन्यभी कार्यके आकारसे सर्वओरसे फैलाहुआ नामरूपवाला यह भासमानजो वस्तु सो ब्रह्महै ॥ हे सौम्य ! अब बहुत कहने करके क्याहै, परन्तु यह सर्व विश्व (जगत्) अत्यन्त श्रेष्ठ ब्रह्म ही है । और ब्रह्मसे भिन्नप्रतीतिहै सो सर्व रज्जु विषे सर्पकी प्रतीतिवत् अविद्यामात्र है । और "ब्रह्मैवैकंपरमार्थसत्यामिति" । एक ब्रह्मही परमार्थ से सत्य है । यह वेदकी आज्ञा है ॥ ११ । ४३ ॥

इति श्रीमुण्डकउपनिषद्गतद्वितीयमुण्डकके द्वितीयखण्डकी भाषाटीका समाप्त ॥

तृतीयमुण्डकगतप्रथमखण्डकीभाषाटीका प्रारंभ ॥

प्राप्तहोताहै। और जिसकी प्राप्तिके होने से हृदयकी ग्रन्थि और संशय आदिक संसार के कारण का अत्यन्त नाशहोता है, ऐसी जो पराविद्या सो कही और अक्षरके दर्शनका उपाय जो योग्यहै, सो धनुषादिकों के ग्रहणकी कल्पनासे कहा। अब तिस ज्ञान के सहकारी सत्यादि साधन, कहने को योग्य हैं, तिनके अर्थ उत्तर ग्रन्थका अब आरम्भ है। तहां यथार्थ आत्मतत्त्व को अति दुःख से जानने योग्य होने करके, जो पूर्व किया भी तत्त्वका उपदेश (निर्धार) सो पुनः अन्यप्रकारसे कहतेहैं। तहां सूत्ररूप जो प्रथम मन्त्रहै, सो परमार्थरूप वस्तुके निश्चयार्थ प्रारम्भ कहतेहैं। "द्वासुपर्णासयुजासखायासमानंवृक्षंपरिषस्वजाते"। दो पक्षी हैं साथ ही युक्तहैं (और) सखाहैं (और) समान हैं वृक्षको आश्रय करते भये। जीव और ईश्वर यह दोनों शोभायुक्त गमनवाले [जीवको अज्ञानी होने करके। और नियम में रखने के योग्य होने करके उचित होने से, और ईश्वर को सर्वज्ञ होनेकरके, और नियामकपने की शक्तिके योगसे, जीव और ईश्वर इन दोनोंका नियम्य और नियामक भावकी प्राप्तिरूप गमन (उड़ना) कचित् है] होने से अथवा पक्षीके समान होनेसे पक्षी हैं सो सर्वदा साथही युक्त (रहते) हैं। और जिसकरके तुल्य प्रख्याति कहावने की योग्यता) वाले हैं, और तुल्यही प्रकाशके कारण हैं। एतदर्थ परस्पर सखा हैं। और समान हैं॥। इसप्रकार होनेसे दोनोंके ज्ञानका स्थानक होनेसे, एक जो वृक्षवत् छेदन (नाश) रूप धर्मकी तुल्यतासे शरीररूपी वृक्षहै, तिसके अर्थ एक वृक्षके प्रति फल के उपभोगार्थ दोनों पक्षीवत् मिलापको करतेभये। अर्थात् यह शरीररूपी वृक्ष "ऊर्ध्वमूलोऽर्वाक्शाखएषोऽश्वत्थः सनातनः" ऊंचे (ब्रह्मरूप) मूलवाला है, और (प्राणादिक) नीची शाखावाला है। और अपनी स्थितिके नियमसे रहित होनेसे अश्वत्थ (अस्थिर) है और अज्ञान पर्यन्त होने (रहने) वालाहै, और "क्षेत्र-

मित्यभिधीयते"

समाने वृक्षे पुरुषोनिमग्नोऽनीशया शोचति मुह्यमानः । जुष्टं यदा पश्यत्यन्यमीशमस्य महिमानमिति वीतशोकः ॥ २ । ४५ ॥

फलका आश्रय है, तिस (शरीररूपवृक्ष) को पक्षियोंवत् अविद्या काम और कर्मकी वासना के आश्रय लिंगशरीररूपी उपाधिवालाआत्मा (जीव) और ईश्वर यह दोनों मिलतेभये। और "तयोरन्यः पिप्पलंस्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्योऽभिचाकशीति"। तिन दोनोंके मध्य एक वृक्षके फलके स्वादको भोक्ताहै और दूसरा भोक्ता नहीं किन्तु देखता है। मिलेहुये तिन दोनों के मध्य एक जो लिङ्गशरीररूपी उपाधियुक्त क्षेत्रज्ञ नामवाला जीवहै सो शरीररूपी वृक्षको आश्रय करताहुआ अपने पाप पुण्यमय कर्मजन्य सुखदुःखमय अनेक प्रकारकी वेदना (दुःख) के अनुभवरूप स्वाद फलको अविवेकता करके भोक्ताहै, और अन्य (दूसरा जो नित्यशुद्ध बुद्ध मुक्त स्वभाववाला सर्वज्ञ शुद्ध सत्यगुणप्रधान मायोपाधिवाला ईश्वरहै सो भोक्ता नहीं और जिसकरके यह ईश्वर नित्य साक्षीपनेकी सत्तामात्रसे भोग्य और भोक्ता दोनोंका प्रेरक है, एतदंर्थ सो तो अभोक्ताहुआ वृक्षसे पृथक् होके केवल उदासीन हुआ देखताही है। और तिसका दर्शनमात्रसेही राजावत् प्रेरकपना सिद्धहै (विक्रियावान् नहीं) ॥ १ । ४४ ॥

हे सौम्य ! "समानेवृक्षेपुरुषोनिमग्नोऽनीशयाशोचतिमुह्यमानः"। एक वृक्षबिषे पुरुषनिमग्नहुआ अनीशासे मोहकोपावता हुआ शोकको पावता है। तहां ऐसे होनेसे उक्तप्रकारके शरीररूप एकवृक्षबिषे पुरुष जो भोक्ता जीवहै, सो अविद्या काम कर्म फल रागद्वेषादिरूप बड़े भारकरके आक्रान्त (रोका) हुआ संसारसागर बिषे तूंबेवत् निमग्न भयाहै अर्थात् दृढ़करके देह (संघात) बिषें आत्मभावको प्राप्तभयाहै। और यहही हस्त पादादि अवयवयुक्त शरीररूप पिंड मैं अमुक (देवदत्त) का पुत्रहौं, और इसी (

का पौत्रहौं, दुर्बलहौं, मोटाहौं, गुणवान् हौं, निर्गुणहौं, सुखीहौं, दुःखीहौं, इसप्रकारका (अज्ञानलक्षणात्मक) ज्ञान इसको होता है, इससे अन्य (सम्यक्) ज्ञान इसको नहीं होताहै। इसप्रकार जन्मता मरता रहता है। और सम्बन्धी बान्धवादिकों से संयोग वियोगको पावताहै। इस हेतुसे मोहको [आवरण और विक्षेप यह दोनों अविद्या के कार्य हैं। तिनमें ईश्वरभावकी अप्राप्ति रूप जो अनीशा, सो आवरण है और जो शोकको करता है सो विक्षेप है। और इन दोनोंका हेतु जो अनिर्वचनीय अज्ञान सो मोह है तिसमोह करके विशिष्ट भया। इत्यर्थः] पावताहुआ। अर्थात् अनेक प्रकारके अनर्थों से अविवेकी होताहै तिसकरके चिन्ताको प्राप्त हुआ मैं किसीभी कार्यके करनेविषे समर्थ नहीं हौं, मेरा पुत्र नष्ट भयाहै, मेरी भार्या (स्त्री) मृत्युवश भई है, अब मुझको जीवने साथ कहो क्या प्रयोजन है कुछभी नहीं ॥ इस प्रकार अत्यन्त दीनभावतारूप जो अनीशा (अशक्तता) है, तिसकरके सन्तापरूप शोकोंको पावता है ॥ सो इसप्रकार प्रेत तिर्यक् (पक्षी) और मनुष्यादिक योनियोंविषे वेगवान्‌ताको प्राप्तभया जीव कदाचित् अनेक जन्मोंविषे सञ्चय किये शुद्ध धर्मरूप कर्म तिस निमित्त से कोई एक परमदयालुआचार्य पुरुषने देखाया जो योगमार्ग तिस विषे, अहिंसा, सत्य (यथार्थभाषण) ब्रह्मचर्य, वैराग्य और शम दमादि साधन तिनकरके युक्त, एकाग्र चित्तवालाहुआ, जिससमय अनेक योगीजनों करके और अनेक कर्मिष्ठ जनोंकरके " जुष्टं यदा पश्यत्यन्यमीशमस्य महिमानमिति वीतशोकः " सेवन किये अन्य ईश्वरको और इसकी महिमाको जिसकाल विषे देखता है तब वीतशोक होताहै। सेवनकिये, देहरूप (वृक्षकी) उपाधि के लक्षणसे अन्य (विलक्षण) क्षुधा, पिपासा, शोक, मोह, जरा, और मृत्यु, यह जो देह, प्राण, मनकी षट्‌ऊर्मी हैं तिनसे रहित असंसारी, ईश्वरको और यह मैं सर्व जगत्‌का आत्माहौं और सर्व को समानहौं (सर्वत्र और सम्पूर्ण भूतोंविषे स्थितहौं और अन्य

यदा पश्यः पश्यते रुक्मवर्णं कर्त्तारमीशं पुरुषं ब्रह्मयोनिम् । तदा विद्वान् पुण्यपापे विधूय निरञ्जनः परमं साम्यमुपैति ॥ ३ । ४६ ॥

अविद्याजन्य उपाधि सो जो परिच्छिन्न मिथ्या आत्मा सो मैं नहीं हौं । और जगत् जो है सो इसही मुक्त परमेश्वरका रूपहै । इस प्रकारकी विभूतिरूप इसकी महिमाको ध्यावताहुआ देखता है तब वीतशोक होता है । अर्थात् सर्व शोकमय सागर से मुक्त (उत्तीर्ण) होताहै ॥ २ । ४५ ॥

हे सौम्य ! अन्य मन्त्र भी उक्त अर्थकोही सविस्तर कहते हैं, सोभी श्रवण करो "यदा पश्यः पश्यते रुक्मवर्णं कर्त्तारमीशं पुरुषं ब्रह्मयोनिम् " जिसकालविषे विद्वान् (जिज्ञासु पुरुष) स्वयंज्योतिस्वरूपवाले (सर्वजगत्के) कर्त्ता ब्रह्मयोनि ईश्वररूप पुरुष को (अपनाआप) देखताहै । "तदा विद्वान् पुण्यपापे विधूय निरञ्जनः परमं साम्यमुपैति " । तिससमय (सो देखनेवाला) विद्वान् (बन्धनरूप) पुण्यपाप (मय कर्म) को (समूल) दग्ध करके, वा (पुण्य पापमय कर्मरूप मलसे अत्यन्तशुद्ध होयके) निरंजन (अविद्या से रहित) हुआ परम (सर्वसे श्रेष्ठ) अद्वितीयरूप साम्य (एकता) भावको प्राप्त होताहै । ॥ ३ । ४६ ॥

हे सौम्य ! "प्राणो ह्येष यः सर्वभूतैर्विभाति विजानन् विद्वान् भवते नातिवादी " । जो यह प्राण सर्वभूतों करके विविध प्रकार का भासता है विद्वान् जानता है अतिवादी नहीं होता है । जो यह प्राण का प्राण परमेश्वर ब्रह्मा से लेके तृणादि पर्यन्त सर्व भूतोंविषे स्थित सर्वात्मा हुआ विविध प्रकार का भासताहै । इस प्रकार सर्वभूतोंविषे स्थित सर्वात्मा परमेश्वर को जो वाक्यार्थ के ज्ञानविषे विद्वान् हुआ यह मैंहूं इस प्रकार साक्षात् आत्मभाव से जानताहै, सो पुरुष अन्यसर्वको उल्लंघनकरके अतिवादी (कहने के स्वभाववाला) नहीं होताहै । अर्थात् जो पुरुष उक्तप्रकार 'प्रा-

प्राणो ह्येष यः सर्व्वभूतैर्विभाति विजानन्विद्वान् भवते नातिवादी। आत्मक्रीड आत्मरतिः क्रियावानेष ब्रह्मविदां वरिष्ठः॥ ४। ४७॥

णस्य प्राणः' प्राणकेभी प्राणरूप आत्माको साक्षात् सोहमस्मि भावसे जानताहै सो अतिवादी नहीं होताहै। क्योंकि जब 'आत्मैवेदं सर्वं' सर्वनाम रूपात्मक आत्माही है, तिससे पृथक् रंचकमात्र भी नहींहै, तब यह आत्मनिष्ठ विद्वान् किसको उल्लंघन (निषेध) करके कहै। और जिस पुरुषको उत्तम मध्यम अन्यवस्तु देखनेविषे आवतीहैं सो तिसको उल्लंघनकरके कहताहै। और यह आत्मानुभवी विद्वान् तो अपने आपसे 'नान्यत्पश्यति, नान्यच्छृणोति, नान्यद्विजानाति' अन्य को देखता नहीं, अन्य को सुनता नहीं, अन्य को जानता नहीं, एतदर्थ अतिवादी होता नहीं। और "आत्मक्रीड आत्मरतिः क्रियावानेष ब्रह्मविदांवरिष्ठः" यह आत्मक्रीड़, आत्मरति, क्रियावान् ब्रह्मवेत्ताओंविषे, श्रेष्ठहै यह विद्वान् कि आत्मा विषेहै क्रीड़ा (विचारात्मकरमण) जिसकी, अन्य पुत्रदारा वित्तादिकोंविषे नहीं, सो कहिये; आत्मक्रीड़, और आत्मा विषे है प्रीति जिसकी, अन्य देहादिकोंविषे नहीं सो कहिये आत्मरति। और तैसेही ज्ञान ध्यान और वैराग्यादिकहैं क्रिया जिसकी अन्य श्रौतस्मार्त्तादिक नहीं सो कहिये क्रियावान्, इसप्रकारहै। [यहां ज्ञान कर्मके समुच्चयके प्रतिपादक वेदान्तके एकदेशीके व्याख्यानको प्रकटकरके निषेध करतेहैं] कोईएक (एकदेशीमतवाले) वादी तो 'क्रियावान्' इसपदके अर्थको अग्निहोत्रादिरूप (बाह्य) कर्म और ब्रह्मविद्याके समुच्चयविषे इच्छा करतेहैं। परन्तु सो उनका इच्छा करना 'एषब्रह्मविदां वरिष्ठः' इस मुख्य अर्थवाले वचनसे विरोध को प्राप्त होताहै। व जिसकरके बाह्यक्रिया और आत्माविषे प्रीति (निर्विकल्पता) यह दोनों समकाल (साथही) होनेको अशक्य हैं। किन्तु कोई एक अग्निहोत्रादि बाह्य क्रियासे सम्यक् प्रकारसे

सत्येनलभ्यस्तपसा ह्येषआत्मा सम्यग्ज्ञानेन ब्रह्मच र्य्येण नित्यम्। अन्तःशरीरेज्योतिर्मयोहिशुभ्रोयंपश्यन्ति यतयः क्षीणदोषाः ॥ ५ । ४८ ॥

निवृत्तहुआ पुरुषही आत्मक्रीड़ होताहै, क्योंकि (अनात्माश्रय) बाह्यक्रिया, और (आत्माश्रय) आत्मक्रीड़ाका परस्पर विरोध है ताते। जैसे तम और प्रकाशकी एकत्र स्थिति सम्भवे नहीं, तैसे "क्रियावान्" इस वाक्य से जो बाह्य क्रिया और ज्ञान (आत्मानुसंधान) का समुच्चय परस्परके विरोध कारण से संभवे नहीं, ताते ज्ञान और कर्मका जो समुच्चय प्रतिपादन करना सो व्यर्थ वाचालता (बकवाद) है। और "अन्यावाचोविमुच्यथ" (अन्य वाणी को छोड़ो) और "संन्यासयोगात्" (संन्यास योगसे) इत्यादि श्रुतियोंके प्रमाणसे। एतदर्थ जो ज्ञान ध्यानादिक क्रियावाला और भेदरहित अर्थ की मर्यादावाला संन्यासीहै सोई यहां क्रियावान् है। जो ऐसे लक्षणवाला अतिवाद रहित आत्मक्रीड़, आत्मरति और योगादि क्रियावान् ब्रह्मनिष्ठहै सो यह सर्व ब्रह्मवेत्ताओंके मध्य वरिष्ठ सर्वमें मुख्यहै ॥४।४७॥

हे सौम्य! अब संन्यासीको सम्यक् ज्ञानके [यहां सम्यक् ज्ञान शब्दकरके वस्तुको विषयकरनेवाले अनुभवरूप फल पर्यन्त वाक्यार्थके ज्ञानको कहतेहैं। और जिसकरके अपरोक्ष अनुभवरूप जो ज्ञान तिसज्ञानको अविद्याकी निवृत्तिरूप जो अपना कर्तृत्वरूप कार्य तिसके करनेबिषे सहकारीकी अपेक्षाका असंभवहै, एतदर्थ परिपक्व विद्याके लाभार्थ परिपक्व ज्ञानका और सत्यादि साधनों का समुच्चय मानतेही हैं। और इसकरके भास्कर के मतकी सिद्धि होती नहीं। क्योंकि परिपक्व विद्या में सहकारीकी अपेक्षा बिषे प्रमाणका अभावहै, अर्थात् परिपक्व विद्याका सहायक और विरोधी कोई नहीं, ताते और तिस विद्यासे कर्मके अलेपका श्रवण है, अर्थात् "नलिप्यतेकर्मणापापकेनेति" इत्यादि प्रमाण से

परिपक्क विद्यावाला विद्वान् कर्म्मोंसे लिप्यमान होता नहीं, ताते। और कर्मरहित देवतादिकोंका युक्त होना सुना जाता है ताते] सहकारी जो निवृत्तिप्रधान सत्यादिक साधन हैं, सो विधान करते हैं। "सत्येन लभ्यस्तपसा ह्येष आत्मा सम्यग्ज्ञानेन ब्रह्मचर्येण नित्यम्"। यह आत्मा नित्य सत्यसे प्राप्त होने योग्य है (नित्य) तप से (प्राप्त होने योग्य है) और यथार्थ आत्मज्ञान के दर्शन से (नित्य प्राप्तहोने को योग्य है) और (नित्य) ब्रह्मचर्य से (प्राप्त होने योग्य है)। यह आत्मा नित्यही असत्य भाषण के त्यागरूप सत्य से प्राप्त होने योग्य है। और नित्यही इन्द्रिय और मनकी एकाग्रतारूप तपसे प्राप्त होने के योग्य है। तथाच "मनसश्चेन्द्रियाणामेकाग्र्यं परमं तपः"। मन और इन्द्रियोंकी एकाग्रता परम तप है। इस प्रकार स्मृतिविषे कहाहै ताते उक्त तपका लक्षण युक्त है। और जिस करके सो तप आत्माके दर्शन के अभिमुख (सन्मुख) होनेसे आत्मदर्शन विषे, अनुकूल है, एतदर्थ यह तपका परमसाधन है। और अन्य जे चान्द्रायणादि रूप तपहैं सो तिस (आत्मदर्शन) का परम साधन नहीं। किंवा, यथार्थ आत्मज्ञानके दर्शन (विचार) से नित्य प्राप्तहोने योग्यहै और नित्य मैथुन के अनाचरणरूप ब्रह्मचर्यसे प्राप्तहोनेको योग्य है। और जिसप्रकार यह साधन कहे, तैसेही "नयेषुजिह्ममनृतं न मायाचेति"। जिन विषे कपट झूठ और माया नहींहै। यह प्रश्न उपनिषद्के वाक्य करके कहा है॥ प्र०॥ जो इन साधनों से प्राप्त होताहै यह आत्मा कौन और कहांहै॥ उ०॥ "अन्तःशरीरे ज्योतिर्मयोहि शुभ्रोयं पश्यन्ति यतयः क्षीणदोषाः"। शरीर के भीतर प्रकाशमय शुद्धहै, जिसको दोषोंसे रहित संन्यासी पावते हैं। शरीरके भीतर हृदयकमल नामक एक मांसपिंडी है तद्गत आकाशरूप अन्तःकरणविषे प्रकाशमय शुद्ध आत्मा है, जिस आत्माको काम, क्रोधादिक चित्तके मलरूप दोषोंसे रहित संन्यासी देखते (पावते) हैं। अर्थात् सो आत्मा नित्य सत्या-

सत्यमेव जयते नानृतं सत्येन पन्था विततो देवयानः।
येनाक्रामन्त्यृषयो ह्याप्तकामा यत्र तत्सत्यस्य परमं निधा
नम् ॥ ६ । ४६ ॥

दिरूप साधनोंसे संन्यासियों करके प्राप्तहोता है। कदाचित् होने वाले सत्यादिकोंसे प्राप्त होता नहीं। यहां यह सत्यरूप साधन की स्तुत्यर्थ अर्थवाद है ॥ ५ । ४८ ॥

हे सौम्य ! "सत्यमेव जयते नानृतं सत्येन पन्था विततो देवयानः"। सत्यही जयको पावता है अनृत नहीं, सत्यसे देवयान नामक मार्ग प्रवृत्तभया है सत्यवान्ही जयको पावता है, अनृत (झूठ) बोलनेवाला नहीं। जिस करके पुरुष के अनाश्रितही केवल सत्य और झूठके सम्भवहुये, जय वा पराजय सम्भवे नहीं किन्तु असत्यवान् जो अनृत (झूठ) बोलनेवाला पराभव को पावता है। सत्यवादी नहीं, यह लोकविषे प्रसिद्ध है। इसकरके सत्यका बलवान् साधनपना सिद्ध भया। किंवा सत्यका अतिशय साधनपना शास्त्रसे भी जाना जाता है ॥ प्र० ॥ किसप्रकार जानता है ॥ उ० ॥ यथार्थ बोलने की व्यवस्थारूप सत्यसे देवयान नामवाला मार्ग निरन्तरपनेसे प्रवृत्तभया है। और "येनाक्रामन्त्यृषयो ह्याप्तकामा यत्र तत्सत्यस्य परमं निधानम्" जिहां सत्यका परमनिधान है तहां जिसप्रकारसे आप्तकाम ऋषि जन गमन करतेहैं। जहां सत्यरूप उत्तम साधनका साध्य सो परमार्थ तत्त्वरूप पुरुषार्थ स्वरूपसे वर्त्तमान परमनिधानहै। ऐसा जो ब्रह्मलोक, तहां जिस प्रकारके प्रणवादि उपासनावाले और कपट माया झूठ अहंकार दम्भ शठता (आदि आसुरीसम्पदा) से रहित और सर्व ओर से तृष्णा रहित ऋषिलोक गमन करते हैं। सो सत्यसे निरन्तरपने करके प्रवृत्त भया है। यह पूर्वके पदसे सम्बन्ध है ॥ ६ । ४६ ॥

हे सौम्य ! सत्यका निधान जो पूर्व कहा तिसको पुनः विशेषणयुक्त कहते हैं ॥ प्र० ॥ सो सत्यका निधान क्या है, और सो

बृहच्च तद्दिव्यमचिन्त्यरूपं सूक्ष्माच्च तत्सूक्ष्मतरं विभाति। दूरात्सुदूरे तदिहान्तिके च पश्यत्स्विहैव निहितं गुहायाम् ॥ ७। ५० ॥

किस धर्मवाला है ॥ उ० ॥ "बृहच्च तद्दिव्यमचिन्त्यरूपं सूक्ष्माच्च तत्सूक्ष्मतरं विभाति"। सो बड़ा है और स्वयंप्रकाशहै और अचिंत्यरूप है, और सूक्ष्मसे भी अतिशय सूक्ष्म है और विविधप्रकार भासता है। सो प्रसंग विषे प्राप्तभया ब्रह्म, सत्यादि साधन करके सर्व ओर से व्याप्त है ताते बड़ा है, और स्वयंप्रकाश (इन्द्रियोंका अविषय) है और एतदर्थ ही, अचिन्त्यरूप है, और सो आकाशादि सूक्ष्मोंसे भी अतिशय करके सूक्ष्महै। और जिस करके यह सर्वका कारण है, तिसकरकेही इसको सर्वसे अधिक सूक्ष्मता है। और ऐसाहुआ भी सूर्य्य और चन्द्रादिक आकारसे नाना प्रकार का भासता (प्रकाशता) है। किंवा "दूरात्सुदूरे तदिहान्तिके च पश्यत्स्विहैव निहितं गुहायां"। सो दूरसे दूर है इसमें समीप वर्तता है, यहांही चेतनावाले गुहाविषे स्थित है। सो ब्रह्म अज्ञानी पुरुषों को अत्यन्त अगम होनेसे दूर से भी दूरदेश विषे वर्तता है, और विद्वानों का आत्माहोने से और सर्व्वान्तर होनेसे, और "आकाशमन्तरोयं" वा "आकाशशरीरंब्रह्म" आकाशकेभी भीतर है इस श्रुतिसे, इस देहमें समीप विषे वर्तता है। और यहां ही चेतनावाले पुरुषों के मध्य बुद्धिरूपी गुहाविषे स्थित यह ब्रह्मदर्शनादि क्रियावाला होने करके योगी पुरुषोंसे लक्ष्य में आवताहै, तथापि अविद्यासे आवृत हुआ तहांही स्थित ब्रह्म अविद्वानों करके कदापि लक्ष्यमें आवता नहीं। इति सिद्धम् ॥ ७। ५० ॥

हे सौम्य! फेर भी, असाधारण विषे भी असाधारणरूप जो तिसके ज्ञानार्थ साधनकहते हैं "न चक्षुषा गृह्यते नापि वाचा नान्यैर्देवैस्तपसा कर्मणा वा"। चक्षुकरके नहीं ग्रहणकरते, और वाणीकरके भी नहीं (ग्रहणकरते) और अन्यदेवताओंसे भी नहीं (ग्रहणकरते)

न चक्षुषा गृह्यते नापि वाचा नान्यैर्देवैस्तपसा कर्म्मणा वा । ज्ञानप्रसादेन विशुद्धसत्त्वस्ततस्तु तं पश्यते निष्कलं ध्यायमानः ॥ ८ ॥ ५१ ॥

और तपसेभी (नहीं ग्रहणकरते) और कर्मसेभी (नहींग्रहणकरते) । जिसकरके यह ब्रह्मसे अभिन्न आत्मा सो अरूप होने से किसी भी पुरुषकरके चक्षुसे ग्रहण (विषय) किया जाता नहीं, और अवाच्य होनेसे वाणीसे भी ग्रहण किया (कहा) जाता नहीं, और अन्य जे देवता (इन्द्रियां) तिनकरके भी ग्रहण (विषय) किया जाता नहीं, और तप जो सर्व फलकी प्राप्तिका साधन तिस तप करकेभी ग्रहण कियाजाता नहीं, क्योंकि तपआदिकोंके फलादिकोंसे पृथक् है। अथवा तैसे प्रसिद्ध महत्त्ववाले अग्निहोत्रादि रूप वैदिक कर्मसे भी ग्रहण किया जाता नहीं ॥ प्र० ॥ जब उक्त प्रकार से नहीं ग्रहण होता, तब तिसके ग्रहणका साधन कौन है ॥ उ० ॥ "ज्ञानप्रसादेन विशुद्धसत्त्वस्ततस्तु तं पश्यते निष्कलं ध्यायमानः" । ज्ञानके प्रसाद से शुद्ध अन्तःकरणवाला जानने को योग्यहै ताते सो तिस निष्कलको देखता है । ज्ञान जो है सो सर्व प्राणधारियोंको स्वभावसेही आत्माके बोधन करने विषे समर्थ है, तथापि बाह्य विषयों विषे रागादि दोषोंकरके मलिन हुआ नित्य समीपस्थ आत्माको भी, मैलसे आवृत दर्पणवत्, अरु चंचलजलवत्, बोधनकरता नहीं। सो ज्ञान, जब इन्द्रिय और विषयोंके सम्बन्धसे उत्पन्न भये जे रागादिक मैल तिन मैलको दूर करनेसे दर्पण अरु जलादिकोंवत् प्रसन्न (स्वच्छ और शान्त) स्थित होताहै, तब ज्ञानका [जिसकरके अर्थको जानिये ऐसी जो बुद्धि तिसको ज्ञान कहते हैं। तिसकी जो प्रसन्नता तिसको 'ज्ञान प्रसाद' कहते हैं । पुरुष ध्यान करता हुआ ज्ञानप्रसाद को पावताहै। और ज्ञानके प्रसाद से आत्माको देखता है । इस प्रकार अर्थका क्रम यहां जानना । क्योंकि संशय आदि मलसे रहित

एषोऽणुरात्मा चेतसा वेदितव्यो यस्मिन् प्राणः पञ्चधा संविवेश। प्राणैश्चित्तं सर्वमोतं प्रजानां यस्मिन्विशुद्धे विभवत्येष आत्मा॥ ६। ५२॥

प्रमाके ज्ञानकोही साक्षात्कारका हेतु होने से ध्यानक्रिया को प्रमाज्ञानकी साधनता की असिद्धि है ताते] प्रसाद होता है। तिस ज्ञानके प्रसादसे शुद्ध अन्तःकरणवाला पुरुष, जिस करके ब्रह्मके देखने को योग्यहै, एतदर्थ यह पुरुष सर्व अवयवों के भेद से रहित निष्कलरूप तिस ब्रह्मको सत्यादि साधनवान् और जितेन्द्रिय होयके एकाग्रमन से ध्यान करताहुआ आत्मा कोंही देखता (प्राप्तहोता) है॥ ८। ५१॥

हे सौम्य! "एषोऽणुरात्मा चेतसा वेदितव्यो यस्मिन् प्राणःपञ्चधा संविवेश"। यह आत्मासूक्ष्म है, सो जिस विषे प्राण पांचप्रकार से सम्यक् प्रवेश को पायाहै तिस विषे चित्त करके जानने को योग्यहै। यह आत्मा सूक्ष्महै, सो जिस शरीर विषे प्राणवायु प्राण अपानादि पांचप्रकार के भेद करके सम्यक् प्रकार प्रवेशको पायाहै, तिसही शरीर विषे हृदय कमलरूप देशमें केवल विशुद्ध ज्ञानरूप चित्तकरके जानने को योग्यहै॥ प्र०॥ किसप्रकार चित्तसे आत्मा जानने को योग्य है॥ उ०॥ घृतसे दूधवत्, और अग्निसे काष्ठवत् [बौद्ध आदिकों को चित्तादिकों विषे चेतना के भ्रमके दर्शन से, चित्त जो है सो तिस अपने सम्बन्धी वस्तु विषे चैतन्यका आविर्भाव करने में स्वभाव सेही योग्यहै। एतदर्थ चित्तविषे परमात्माकी अभिव्यक्ति (प्रकटता) के सम्भवसे चित्तसे ब्रह्मको जानने की योग्यता कहते हैं, इसप्रकार की सम्भावना के अर्थ यहां कहते हैं "प्राणैश्चित्तं सर्व्वमोतं प्रजानांयस्मिन् विशुद्धे विभवत्येषआत्मा"। प्राण और इन्द्रियां सहित सर्व प्रजाका अन्तःकरण व्याप्तहै, तिस विशुद्ध(चित्त) विषे यह आत्मा विशेष करके प्रकाशताहै। जिस चैतन्य करके प्राण और

यं यं लोकं मनसा संविभाति विशुद्धसत्त्वः कामयते याँश्च कामान्। तंतं लोकं जायते तांश्च कामांस्तस्मादात्मज्ञं ह्यर्चयेद्भूतिकामः ॥ १० । ५३ ॥

इति तृतीयमुण्डके प्रथमखण्डः ॥

इन्द्रियों करके सहित, प्रजाका सर्व अन्तःकरण व्याप्त है । और जिस करके लोक विषे प्रजाका सर्व अन्तःकरण चेतनावाला प्रसिद्ध है तिसही करके तिस चेतनावान् (अनुसन्धानात्मक) वृत्तिरूप चित्त से आत्मा जानने को योग्यहै । पुनः यह चित्त कैसा है कि, जिसक्लेशादि मलरहित शुद्धहुये चित्तविषे यह कथनकिया आत्मा विशेष करके स्वस्वरूप सेही प्रकाशताहै ॥ ६ । ५२ ॥

हे सौम्य ! जो पुरुष ऐसे उक्त लक्षणवाले सर्व के आत्मा को अपना आप आत्मभाव से प्राप्तभया है तिस पुरुषको सर्वात्मा होने से सर्वकी प्राप्तिरूप फलहोता है, इसप्रकार कहते हैं । "यंयं लोकं मनसा संविभाति विशुद्धसत्त्वः कामयते यांश्च कामान्" ।निर्मल अन्तःकरण । जिस जिस लोकको मन करके चितवता है और जिन भोगों की इच्छा करता है । जो क्लेशादि मल रहित है, और आत्माविषे शुद्ध अन्तःकरणवाला पुरुषहै सो, जिस जिस पुत्रादिरूप लोकको "मह्यमन्यस्मै वा भवेदिति।" मेरेअर्थ वा अन्य के अर्थहोवे । इसप्रकार मनसे चितवता है और जिन जिन भोगों की इच्छा करता है "तंतं लोकं जायते तांश्च कामांस्तस्मादात्मज्ञं ह्यर्चयेद् भूतिकामः" । तिस तिस लोक को और तिन भोगों को पावता है, ताते विभूति की इच्छावाला आत्मज्ञानी का पूजन करे । (एतदर्थ विद्वान्को सत्यसङ्कल्पवाला होने से विभूति (धनादिक)की इच्छावाला जो पुरुषहै सो आत्मज्ञानसे शुद्धभये अन्तःकरणवाले आत्मज्ञानी को पादप्रक्षालनादि सेवा और

नमस्कारादि पूजन करे॥ हे सौम्य! इसप्रकार आत्मज्ञानी देवताओंवत् पूजने योग्यही है॥ १०। ५३॥

इति मुण्डकउपनिषद्गततृतीयमुण्डक के प्रथमखण्डकी भाषाटीका समाप्त॥

अथ तृतीयमुण्डकेद्वितीयखण्डःप्रारभ्यते॥

सवेदैतत्परमं ब्रह्मधाम यत्र विश्वं निहितं भाति शुभ्रम्। उपासते पुरुषं ये ह्यकामास्ते शुक्रमेतदतिवर्त्तन्ति धीराः॥ १। ५४॥

तृतीयमुण्डकगत द्वितीयखण्डकी भाषाटीकाप्रारंभ॥

हे सौम्य! "सवेदैतत्परमं ब्रह्मधाम यत्र विश्वं निहितं भातिशुभ्रम्।" सो परमधामको जानताहै जिस विषे जगत् स्थितहै, और जो ब्रह्मरूप धाम शुद्धहुआ भासता है। जिस करके 'सो यह' इस उपलक्षणवाले ब्रह्मरूप सर्व कामना के आश्रय परमधाम को जानता है। और जिस ब्रह्मरूप धामविषे सर्व जगत् स्थितहै। और जो ब्रह्मरूप धाम आप शुद्धहुआ अपने प्रकाशसे आपही भासता है। और "उपासते पुरुषं ये ह्यकामास्ते शुक्रमेतदतिवर्त्तन्ति धीराः।" पुरुषको भी बुद्धिमान् कामनासे रहितहुये उपासते हैं सो यह प्रख्यात वीर्य को उलंघ जाते हैं। एतदर्थ ऐसे उस आत्मज्ञानी पुरुषको भी जो धीर (बुद्धिमान्) पुरुष वैभव विभूतिकी कामना से रहित केवल मोक्षकी कामनावाले हुये, जैसे परमात्मरूप देवको, तैसे उपासते हैं सो पुरुष इस प्रसिद्ध शरीर के उपादान कारण बीजरूप वीर्यको उलंघके जाते हैं, बारंबार योनिको धारते नहीं "नपुनः क्रतिंकरोतीति।" पुनः किसी विषे प्रीतिको करता नहीं। इस श्रुतिके प्रमाण से। एतदर्थ तिस सम्यक् आत्मज्ञानी को सर्वप्रकारसे उपासना योग्यहै॥ १।५४

कामान्यः कामयते मन्यमानः सकामभिर्जायते तत्र तत्र । पर्य्याप्तकामस्य कृतात्मनस्तु इहैव सर्व्वे प्रविलीयन्ति कामाः ॥ २ । ५५ ॥

हे सौम्य ! अब मोक्षकी इच्छावाले को सर्वथा कामका त्यागही मुख्य साधन है, इसबातको वेद भगवान् देखावते हैं ।"कामान्यःकामयते मन्यमानःसकामभिर्जायते तत्रतत्र" । जो भोगों को चितवताहुआ इच्छाकरता है सो कामनाके साथ तहांतहां जन्मता है । जो पुरुष दृष्ट और अदृष्ट विषयरूप भोगोंको गुण बुद्धिसे चितवता हुआ इच्छा करताहै, सो तिन धर्म अधर्म विषे प्रवृत्ति के कारण जे विषयोंकी इच्छारूप कामना तिसके साथ तहां तहां जन्मता है । अर्थात् जिन जिन विषयों विषे, विषयों की प्राप्ति के निमित्त जो कामना सो कर्मोंविषे पुरुषको प्रेरणाकरे है, उन उन विषयों विषे उन कामनाओंसे वेष्टित हुयेवत् जन्मता है । और "पर्य्याप्तकामस्य कृतात्मनस्तु इहैव सर्व्वे प्रविलीयन्ति कामाः" । पूर्णकाम कृतात्माके तो इसही विषे सर्व काम विनाश को पावते हैं । जो पुरुष परमार्थ तत्त्वके ज्ञानसे आप्तकाम होने करके सर्व ओर से प्राप्त भये हैं काम (भोग) जिसको सो पूर्णकामहै और निकृष्ट रूप अविद्याके स्वरूपसे निकालके, विद्याकरके अपने श्रेष्ठरूप से कियाहै आत्मा जिसका, ऐसे कृतात्मा हैं । तिस पूर्णकाम कृतात्मा पुरुष के तो इसही विद्यमान शरीर विषे सर्व धर्म अधर्म में प्रवृत्ति के हेतुरूप काम [विषयों विषे यथार्थ दोषोंको देखने से पुरुष पूर्णकाम होताहै (अर्थात् उसकी सर्व कामना समाप्त होतीहैं) और सो विरुद्धलक्षणसे आप्तकाम भया है, और तिस आत्माकीजिज्ञासासेही चित्तको वशकरनेवाले पुरुषके, विषयोंसे इच्छा के भेदरूप काम निवृत्तहोतेहैं] विनाशको पावतेहैं । तिस कामके जन्मके कारणके विनाशसे वे काम उपजते नहीं । अर्थात् [उत्पन्न भये कामोंका ज्ञान विनाभी क्षयहोना सम्भवहै, तातें यहां स्वहेतु

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन। यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा वृणुते तनूं स्वाम्॥ ३। ५६॥

के विनाशसे काम पुनः उपजते नहीं] इत्यभिप्रायः॥ २।५५॥

हे सौम्य ! जब इसप्रकार परमात्मा के लाभसे सर्व का लाभ होताहै, तब तिसकेलाभार्थ शास्त्र अध्ययनादि उपाय विशेष करके करने को योग्य है। इसप्रकार प्राप्तहुए यह कहते हैं। " नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन"। यह आत्मा बहुत पढ़ने से प्राप्तहोने योग्य नहीं, और बुद्धि से पावने योग्य नहीं, और बहुत से सुनने से भी पावने योग्य नहीं। परम पुरुषार्थरूप जिसका लाभ है, इसप्रकार व्याख्यान किया जो यह आत्मा, सो वेद और शास्त्र के बहुतसे अध्ययनरूप प्रवचनसे प्राप्तहोने योग्य नहीं और तैसेही वेदादिकोंके अर्थकी धारणा शक्तिरूप मेधा (बुद्धि) सेभी पावने योग्य नहीं, और तैसेही उपनिषदों के विचार से इतर बहुत से शास्त्रों के श्रवण करनेसे भी पावने योग्य नहीं ॥प्र०॥ तब वो आत्मा किन साधनों से पावने योग्य है ॥ उ० ॥ "यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा वृणुते तनूं स्वाम्"। यह जिसकोही पावने की इच्छा करताहै, तिससे यह पावनेको योग्य है तिसको यह आत्मा अपनी तनूको प्रकाशता है। यह विद्वान् जिसआत्माकोही पावनेकी इच्छाकरताहै, तिसवर्णन (भजन) से [मैं परमात्माहूं, । इसप्रकार अभेद के अनुसन्धानको वर्णन कहते हैं तिस वर्णन से यह आत्मा पावने को योग्य होता है, और बहिर्मुख पुरुषों करके तो सैकड़ोंवार श्रवणादिकके कियेहुएभी यहआत्मा प्राप्तहोता नहीं। एतदर्थ मैं परमात्माहों इस चिन्तनरूप परमात्माके भजनको पूर्वकरकेही श्रवणादिक सम्पादन करनेको योग्यहै, यहभावहै॥ अथवा जिस परमात्माको पावनेकी इच्छा करताहै सो तिस मुमुक्षुरूप से स्थित भये परमात्माकरके अभेदके अनुसन्धानरूप प्रार्थनाकरके मुमुक्षु

नायमात्मा बलहीनेन लभ्यो न च प्रमादात्तपसो वाप्यलिङ्गात्। एतैरुपायैर्यतते यस्तु विद्वांस्तस्यैष आत्मा विशते ब्रह्मधाम ॥ ४ ॥ ॥ ५७ ॥

रूपसे स्थित भया परमात्माही प्राप्तहोने को योग्य है । इसप्रकार अभेद के अनुसन्धानसेही आत्मा प्राप्तहोने योग्य है, कर्मसे कदापि नहीं । इत्यर्थः] यह परमात्मा प्राप्तहोने योग्य है अन्य साधनोंसे नहीं, क्योंकि आत्मा नित्य प्राप्त स्वभाववाला है ताते ॥ प्र० ॥ विद्वान्को यह आत्माका लाभ किसप्रकार का है ॥ उ० ॥ तिस विद्वान् का यह आत्मा अविद्या से आवृत अपनी उत्कृष्ट स्वात्म तत्त्वस्वरूप तनुको प्रकाशता है, अर्थात् विद्याके होनेसे घटादिकों के प्रकाशवत् आविर्भावको पावता है, एतदर्थ अन्यके त्याग से आत्मा के लाभकी प्रार्थनाही आत्मप्राप्ति का साधन है ॥ इति सिद्धम् ॥ ३ । ५६ ॥

हे सौम्य ! जिसकरके यह लिङ्गयुक्त संन्यास सहित बल अप्रमाद और तपरूप साधन आत्माकी प्रार्थना के सहकारी है । "नायमात्मावलहीनेन लभ्यो न च प्रमादात्तपसो वाप्यलिङ्गात्" । यह आत्मा बलहीन करके पावने को योग्य नहीं, और प्रमाद से पावने को योग्य नहीं, और लिङ्ग से रहित तपसे पावनेके योग्य नहीं । एतदर्थ यह आत्मा आत्मनिष्ठा से उत्पन्नभये बलसे रहित पुरुषों करके प्राप्त होनेको योग्य नहीं और पुत्र पशुआदिक विषयोंकी आसक्तिरूप निमित्त से हुए कर्त्तव्य के विस्मरणरूप प्रमाद से प्राप्त होनेको योग्य नहीं । और तैसेही संन्यासरूप लिङ्ग से [॥ प्र० ॥ इन्द्र जनक गार्गी आदिकों को भी आत्मलाभ हुआ ऐसा श्रवण है तब संन्यासरूप लिङ्गसे रहित ज्ञानरूप तपसे भी आत्मा प्राप्तहोनेको योग्य नहीं, ऐसा कैसे कहतेहो ॥ उ० ॥ यद्यपि इन्द्र जनकादिकों को बाह्य संन्यासका अभाव होने से भी आत्मलाभ भया है यह तेरा कथन सत्य है, तथापि संन्यासनाम सर्व के सम्यक् त्यागका है ।

संप्राप्यैनमृषयो ज्ञानतृप्ताः कृतात्मानो वीतरागाः प्रशान्ताः। ते सर्व्वज्ञं सर्व्वतः प्राप्य धीरा युक्तात्मानः सर्व्वमेवाविशन्ति ॥ ५। ५८ ॥

और तिनजनकादिकोंको ममतास्पद और अहंतास्पदविषे सम्यक् वैराग्य होनेसे अन्तरका संन्यास विद्यमानहीथा। और बाह्य का लिंग (चिह्न संन्यास) सो श्रुति करके कहनेको इच्छित नहीं। अर्थात् बाह्य चिह्न (संन्यास) का श्रुतिको आग्रह नहीं, क्योंकि [नलिङ्गंधर्म्मकारणम्' । लिंग (बाह्य चिह्न) जो है सो धर्म्मका कारण नहीं। यह स्मृतिका प्रमाणहै ताते] रहित ज्ञानरूप तपसे भी प्राप्तहोनेको योग्य नहीं। और "एतैरुपायैर्यतते यस्तु विद्वांस्तस्यैष आत्मा विशते ब्रह्मधाम"। जो विद्वान् उक्त उपायोंसे प्रयत्न करताहै तिसका यह आत्मा ब्रह्मधाम के अर्थ सम्यक् प्रवेश करता है। जो विद्वान् तत्परहुआ इन बल, अप्रमाद, त्याग और ज्ञानरूप उपायों से भलीप्रकार यत्न करता है तिस विद्वान्का यह (बुद्धिविशिष्ट) आत्मा ब्रह्मरूप धाम विषे (कि जहांका गया पुनः नहीं आवता) सम्यक् प्रवेश करता है (समुद्रमें नदीवत्) इत्यभिप्रायः ॥ ४। ५७ ॥

हे सौम्य ! प्र० ॥ विद्वान् ब्रह्मके विषे किसप्रकार प्रवेशको करतेहैं ॥ उ० ॥ "संप्राप्यैनमृषयो ज्ञानतृप्ताः कृतात्मानो वीतरागाः प्रशान्ताः"। ऋषिलोग इसको जानके ज्ञान से तृप्तहुये सिद्धभये आत्मावाले हुये रागादि दोषोंसे रहित जितेन्द्रिय भये हैं जो परमात्माके दर्शनवाले ऋषिलोग इस (अपने आप) आत्माको जानके तिसही ज्ञानसे तृप्तहुये, कुछ शरीरकी वृद्धि क्षयके कारण जे बाह्यकी तृप्तिके साधन तिनसे नहीं, और परमात्माके स्वरूप से ही सिद्धभये आत्मावालेहुये रागद्वेषादि दोषोंसे रहित जितेन्द्रिय हुयेहैं। और "तेसर्व्वज्ञं सर्व्वतः प्राप्यधीरा युक्तात्मानः सर्व्वमेवाविशन्ति"। सो अत्यन्त विवेकी नित्य चित्तकी एकाग्रताके

वेदान्तविज्ञानसुनिश्चितार्थाः संन्यासयोगाद्यतयः शुद्धसत्त्वाः । ते ब्रह्मलोकेषु परान्तकाले परामृताः परिमुच्यन्ति सर्व्वे ॥ ६ । ५६ ॥

स्वभाववाले पुरुष सर्वव्यापक अद्वैत ब्रह्मको सर्व्वत्र पायके सर्व्व के अर्थ प्रवेशको करते हैं । सो अत्यन्त विवेकशील योग करके नित्य विक्षेपसे रहित चित्तकी एकाग्रता के स्वभाववाले आत्मवेत्ता पुरुष आकाशवत् सर्वव्यापक अद्वैत ब्रह्मको कुछ उपाधि से परिच्छिन्न एक देशसे नहीं पावते, किन्तु, सर्वत्र पाय के शरीर के पतनहुये भी सर्व्वके बिषे प्रवेश करते हैं । अर्थात् फूटे घटके आकाशवत् उपाधिकृत परिच्छेदको छोड़ते हैं । इसप्रकार ब्रह्मवेत्ता ब्रह्मरूप धामके ताईं प्रवेश करतेहैं ॥ इति भावार्थः ॥५। ५८ ॥

हे सौम्य ! "वेदान्तविज्ञानसुनिश्चितार्थाः संन्यासयोगाद्यतयः शुद्धसत्त्वाः " । वेदान्तसे जानित विज्ञानके अर्थ के निश्चयवाले हुये संन्यास योगसे यतिहैं और शुद्ध चित्तवाले हैं । जो पुरुष वेदान्तशास्त्र से उत्पन्नभये विज्ञानके, परमात्माके जानने योग्य, अर्थ को निश्चय करनेवालेहैं, और सर्वकर्मके परित्यागपूर्वक केवल ब्रह्मनिष्ठतारूप संन्यास योगकरके प्रयत्न करने के स्वभाववाले यतिहैं , संन्यास योग करके शुद्धचित्तवाले हैं । "ते ब्रह्मलोकेषु परान्तकाले परामृताः परिमुच्यन्ति सर्व्वे " । सो सर्व परान्तकाल बिषे परामृतहुये सर्व ओरसे मुक्त होतेहैं । सो सर्व परान्तकाल बिषे अर्थात् [संसारी पुरुषोंका जो मरणकालहै (सो परान्त काल है । और तिनकी अपेक्षासे मुमुक्षुओंका संसारके अन्त बिषे जो चरम देहके परित्यागका कालहै (अर्थात् मुमुक्षुका इस दृश्य शरीर के त्याग के समकालही संसार का अन्त है, क्योंकि पुनः उस को संसार नहीं, ताते उक्तप्रकार मुमुक्षु का जो चरम देह के त्याग का काल है) सो परान्तकाल है, तिस परान्तकाल बिषे] ब्रह्मरूप लोकविषे अर्थात् [(यह जो ब्रह्मलोक को बहुवचन

गताः कालाः पञ्चदशप्रतिष्ठा देवाश्च सर्व्वे प्रतिदेवतासु । कर्म्माणि विज्ञानमयश्च आत्मा परेऽव्यये सर्व एकीभवन्ति ॥ ७ । ६० ॥

है सो) यहां साधनों को बहुत होने से, जो ब्रह्मरूप लोक एक है तोभी अनेकवत् देखते हैं और पावते हैं एतदर्थ बहुवचन है। परन्तु 'ब्रह्मलोकेषु' इस शब्दका अर्थ ब्रह्मविषे है] जीवतेहुयेही परम और मरणधर्मरहित ब्रह्महै आत्मा जिनका ऐसे, परामृत हुये सर्वओर से दीपकके निर्वाणवत् अर्थात् [दीपकको बत्ती के किये अवच्छेदके ध्वंस होने से जिसप्रकार तेज के सामान्यभाव की प्राप्तिहोती है, तैसेही इन आत्मज्ञानी पुरुषोंको उपाधिके किये अवच्छेदके ध्वंस होने से चैतन्यके सामान्यभावकी प्राप्तिहोती है] और (घटके ध्वंसहुये) घटाकाशवत् मुक्तहोता है। और गमनकरने योग्य अन्यदेश (लोक वा देह) को अपेक्षा करते नहीं, क्योंकि 'पदंयथानदृश्येत तथाज्ञानविदांगतिः' 'अनध्यगाअध्वसुपारयिष्णव इति' जैसे आकाशविषे पक्षियोंका, और जलविषे जलचरोंका पाद (खोज) नहीं पायाजाता है। तैसेही ज्ञानी पुरुषों की गति है। और संसार के मार्गोंके पार (समाप्ति) होने की इच्छा वाले पुरुष नहीं गमनकरनेवाले होते हैं। ऐसा श्रुति और स्मृति का प्रमाण है ताते [यहां तर्क से भी मोक्ष कहने को योग्यहै, ऐसा कहते हैं] जिससे देशकरके परिच्छिन्न जो गति है सो संसार को विषयकरनेवालीही है, क्योंकि परिच्छिन्न साधनकरके साध्य है ताते। और ब्रह्म तो सर्वरूप होनेसे देशके परिच्छेद से गमन करने योग्य नहीं है। जब देशसे परिच्छिन्न ब्रह्म होय तब मूर्त्त द्रव्यवत् आदि अन्तवाला अन्य के आश्रित सावयव अनित्य और क्रिया साध्य होवेगा। परन्तु ब्रह्म इसप्रकारका होनेयोग्य नहीं, एतदर्थ तिसकी प्राप्तिभी देशकरके परिच्छिन्न होने योग्य नहीं ॥६।५९॥

हे सौम्य ! ब्रह्मवेत्ता पुरुष जो हैं सो अविद्या आदिक संसार के

बन्धनकी निवृत्तिरूप मोक्षकी इच्छा करते हैं, कार्यरूप मोक्ष की नहीं करते। किंवा "गताः कलाः पञ्चदशप्रतिष्ठा देवाश्च सर्व्वे प्रति देवतासु" । पंचदश कला लयको प्राप्तहोती हैं और सर्व देवता प्रति देवताको प्राप्तहोते हैं। मोक्षकाल विषे जो देह की आरम्भ करने वाली प्राणादि पन्द्रह संख्यावाली कला प्रश्नउपनिषद्रूप इस उपनिषद् के ब्राह्मणभाग के छठें प्रश्न विषे कही हैं सो अपने २ कारणविषे लयको प्राप्तहोती हैं। और देहके आश्रित चक्षुआदिक करणोंविषे स्थित जे इन्द्रियाधिष्ठाता देवता सो सूर्य्यादिक प्रति देवताविषे प्राप्त होते हैं। और "कर्म्माणि विज्ञानमयश्च आत्मा परेऽव्यये सर्वएकीभवन्ति" । कर्म और विज्ञानमय (बुद्धि-विशिष्ट) आत्मा पर अव्ययविषे सर्व एकताको पावते हैं। जो मुमुक्षु के किये कर्म हैं, तिन में से फलके आरम्भ करनेवाले (प्रारब्धरूप कर्मोंको उपभोगसेही क्षीण होना है, ताते तिनको छोड़के यहां अवशेष रहे जे फलके आरम्भसे रहित (संचित कर्म हैं तिनका ग्रहण है। और आत्मा जो है सो अविद्या से रचित बुद्धि आदिक उपाधिको अपना स्वरूप मान के जलादिकों विषे सूर्य्यादिकों के प्रतिबिम्बवत् तिसही विज्ञानमय स्वरूपके साथ इस देहके भेद विषे प्रवेशको पाया है। क्योंकि कर्मका उस विज्ञानमय बुद्धि के ताईं फलदेने के अर्थ होना है ताते, एतदर्थ आत्मा विज्ञानमय कहा जाता है) कर्म और विज्ञानमय आत्मा, सो यह सर्व उपाधिकी निवृत्ति से, सत्य, पर, अव्यय, अक्षर आकाशतुल्य अजन्मा, अजर, अमर, अकार्य, अकारण, अन्तररहित, बाहररहित, अद्वैत, शिव और शान्त ब्रह्मविषे जलादिक आधारके दूरहोने से जलादिकों विषे सूर्य्यादिकों के प्रतिबिम्बवत् और घटादिकों के अभाव भये घटादिकों के सम्बन्धी आकाशवत् एकताको पावता है ॥ ७ । ६० ॥

हे सौम्य ! "यथा नद्यः स्यन्दमानाः समुद्रेऽस्तङ्गच्छन्ति नामरूपे विहाय" । जैसे (गङ्गाआदिक) नदियां बहतीहुईं (समुद्रको पायके) नामरूपको त्यागके समुद्र विषे अस्तता (अभेदता) को

यथा नद्यः स्यन्दमानाः समुद्रेऽस्तं गच्छन्ति नामरूपे विहाय। तथा विद्वान्नामरूपाद्विमुक्तः परात्परम्पुरुषमुपैति दिव्यम् ॥ ८ । ६१ ॥

स यो हवै तत्परमं ब्रह्मवेद ब्रह्मैव भवति नास्याब्रह्मवित्कुले भवति। तरति शोकं तरति पाप्मानं गुहाग्रन्थिभ्यो विमुक्तोऽमृतो भवति ॥ ९ । ६२ ॥

प्राप्तहोती हैं "। तथा विद्वान्नामरूपाद्विमुक्तः परात्परम्पुरुषमुपैति दिव्यम् "। तैसे विद्वान् (आत्मज्ञानी अविद्याकृत) नाम और रूप से (भलीप्रकार) मुक्त हुआ (पूर्व कहे प्रकार अक्षररूप) पर से पर दिव्य (उक्त लक्षणवाले) पुरुष को पावता है ॥ इतिवेदानुशासनम् ॥ ८ । ६१ ॥

हे सौम्य ! ॥ शंका ॥ ननु, मोक्षविषे अनेक विघ्न प्रसिद्धहैं, एतदर्थ ब्रह्मवेत्ताभी पंचक्लेशों के मध्य किसी एक क्लेशकरके, और वाद विषे अन्यवादी करके किये विघ्नसे मरणको पायाहुआ अन्य गति को पावेगा ब्रह्मको नहीं॥ स० ॥ यह कहना तेरा बने नहीं, क्योंकि विद्यासेही सर्व प्रतिबन्धोंका अभाव करते हैं ताते और मोक्ष जो है सो केवल अविद्यारूप प्रतिबन्धवाला है अन्य प्रतिबन्धवाला है नहीं, क्योंकि मोक्ष नित्यहै ताते और आत्मरूपहै ताते। एतदर्थ "स यो हवै तत्परमं ब्रह्म वेद ब्रह्मैव भवति"। सो जो कोई एकलोक विषे प्रसिद्ध तिस परमब्रह्मको जानता है सो ब्रह्मही होता है। सो जो कोई एक लोक विषे प्रसिद्ध तिस परमब्रह्मको साक्षात् मैंही हौं, इसप्रकार अभेदतासे जानता है, सो अन्य गति को पावता नहीं, क्योंकि देवताओं की भी इसकी ब्रह्मप्राप्तिके विषे विघ्नकरनेकी सामर्थ्य नहीं, क्योंकि यह ज्ञानी देवता आदि सर्व का आत्मा होता है "ज्ञानीत्वात्मैव मे मतम्" एतदर्थ ब्रह्मका जाननेवाला विद्वान् ब्रह्मही होता है। और "नास्याब्रह्मवित्कुले भवति" । इसके कुलविषे अब्रह्मवित् होता नहीं। । इसविद्वान्के कुल (शिष्य

तदेतदृचाऽभ्युक्तं क्रियावन्तः श्रोत्रिया ब्रह्मनिष्ठाः स्वयं जुह्वते एकर्षिं श्रद्धयन्तस्तेषामेवैतां ब्रह्मविद्यां वदेत शिरोव्रतं विधिवद्यैस्तु चीर्णम् ॥ १० । ६३ ॥

परम्परा) विषे अब्रह्मवित् (ब्रह्मका नजाननेवाला) होता नहीं । और "तरति शोकं तरति पाप्मानं गुहाग्रन्थिभ्योविमुक्तोऽमृतो भवति "। । शोकको तरताहै, पापको तरता है, गुहारूप ग्रन्थिसे मुक्त हुआ अमृत होता है । किंवा यह आत्मवेत्ता जीवताहुआही अनेक इष्टवस्तुके वियोगरूप निमित्तसे भये जे मनके संतापरूप शोक तिनसे तरता (छूटता) है, और धर्म अधर्म नामक पापसेभी तरता है, और गुहा (बुद्धि) रूप ग्रन्थिसोंभी मुक्तहुआ अमृतरूप होता है ॥ यह " भिद्यते हृदयग्रन्थिः " इत्यादि इसही विषे पूर्व प्रतिपादन कियाहै ॥ इति सिद्धम् ॥ ९ । ६२ ॥

हे सौम्य ! अब ब्रह्मविद्याके दानकी विधिके देखावने से, इस उपनिषद्की समाप्ति करते हैं, । तदेतदृचाऽभ्युक्तंक्रियावन्तः श्रोत्रियाब्रह्मनिष्ठाः "। । सो यह मन्त्रने कहा है, क्रियावाले श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठहैं । सो यह विद्याके दानका विधान इस मन्त्रने कहा है, जो शास्त्र उक्त कर्मके अनुष्ठानरूप क्रियावाले और श्रोत्रिय, अर्थात् अपर ब्रह्मकी विद्याविषे कुशलहैं, और ब्रह्मनिष्ठ अर्थात् परब्रह्मकी जिज्ञासावाले हैं । और । " स्वयं जुह्वते एकर्षिं श्रद्धयन्तस्तेषामेवैतां ब्रह्मविद्यां वदेत "। ।श्रद्धावान् हुये आप एकर्षिनामवाले अग्निके अर्थ हवनकरते हैं, तिनसंस्कारयुक्त चित्तवाले अधिकारीरूप पुरुषके अर्थही इस ब्रह्मविद्याको कहना । और ।"शिरोव्रतं विधिवद्यैस्तुचीर्णम् "। ।शिरोव्रत जिन्होंने विधिके अनुसार कियाहै । मस्तक विषे अग्निके धारणकरनेरूप अथर्वणवेदविषे प्रसिद्ध जो शिरोव्रत हैं सो जिन्होंने शास्त्रउक्त विधिके अनुसार कियाहै तिनकेअर्थही इस ब्रह्मविद्याको कहना ॥ १० । ६३ ॥

हे सौम्य ! ।"तदेतत्सत्यमृषिराङ्गिराः पुरोवाच नैतदचीर्णव्रतो

तदेतत्सत्यमृषिरङ्गिराः पुरोवाच नैतदचीर्णव्रतोऽधीते। नमः परमऋषिभ्यो नमः परमऋषिभ्यः ११।६४॥

इति तृतीयमुण्डके द्वितीयखण्डः ॥

ऽधीते" तिस इस सत्यको पूर्व अङ्गिरा मुनीश्वर कहताभया, इस व्रतके आचरण से अध्ययन करताभी नहीं। तिस इस अक्षर नामवाले पुरुषरूप सत्यको पूर्व अङ्गिरा नामक मुनीश्वर, विधिवत् समीप प्राप्तभये और प्रश्नकर्त्ता शौनक नामवाले ऋषिके अर्थ कहताभया। इसप्रकार अन्य आचार्यभी तिसही प्रकार से मोक्षके अर्थ विधिवत् समीप प्राप्तभये मोक्षार्थी मुमुक्षुके अर्थ कहे। और इस ग्रन्थको व्रतके आचरण से रहित पुरुष अध्ययन करता भी नहीं। और जिसकरके व्रतके आचरणवालेकी विद्या संस्कारयुक्त हुई फलके अर्थ होती है, एतदर्थ व्रतरहित पुरुष इसग्रन्थके अध्ययनयोग्य नहीं है। इसप्रकार समाप्तभई जे ब्रह्मविद्या, सो जिन ब्रह्मादिकों से परम्पराक्रमसे सम्यक् प्राप्तभई हैं। "नमःपरमऋषिभ्यो नमः परमऋषिभ्यः"। तिन परम ऋषियों के अर्थ नमस्कार है और जे ब्रह्मादिकपरमब्रह्मको साक्षात् जानतेभये सो परमऋषि हैं। तिन परमऋषियों के अर्थ पुनः भी नमस्कार है। यहां दोबार जो नमस्कारको कथन है सो अत्यन्त आदर के अर्थ है। और यह तृतीयमुण्डक और उपनिषद्की समाप्ति के अर्थ है॥११।६४॥

इति मुण्डकउपनिषद्गत तृतीयमुण्डकके द्वितीयखण्डकी भाषाटीका समाप्त॥

ॐ ब्रह्मानन्दं परमसुखदं केवलं ज्ञानमूर्त्तिं द्वन्द्वातीतं गगनसदृशं तत्त्वमस्यादिलक्ष्यम्॥ एकं नित्यं विमलमचलं सर्वधीसाक्षिभूतं भावातीतं त्रिगुणरहितं सद्गुरुं तन्नमामि॥